ISSN No. 2583-9594

जल चेतना

खण्ड 14, अंक 1, जनवरी 2025

तकनीकी पत्रिका

हिमालय में हिमनदीय झील प्रस्फोट बाढ़ का उभरता खतरा (आमुख कथा)

- नर्मदा नदी का जलविज्ञानीय विश्लेषण
- यन्त्रीकरण द्वारा कृषि में जल संचयन
- जल समाचार

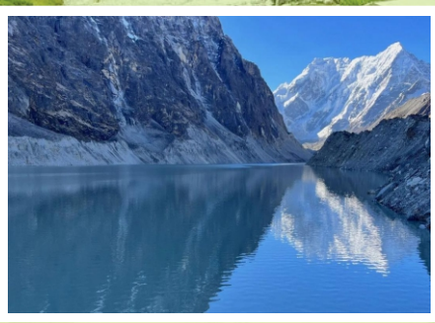

गृह मंत्रालय
राजभाषा विभाग
नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, हरिद्वार
38 वीं अर्धवार्षिक बैठक

राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, रुड़की
हिंदी पखवाड़ा - 2024
काव्य-पाठ प्रतियोगिता

भारत सरकार
गृह मंत्रालय
राजभाषा विभाग
Govt. of India
Ministry of Home Affairs
Department of Official Language
नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, हरिद्वार
अध्यक्षीय कार्यालय: टीएचडीसी इंडिया लिमिटेड, ऋषिकेश
38वीं अर्धवार्षिक बैठक
बुधवार, 28 अगस्त, 2024
आयोजक:
राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, रुड़की

How to Improve The Visibility of NIH

राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, रुड़की
हिंदी पखवाड़ा - 2024
(14 सितम्बर से 28 सितम्बर, 2024)
समापन समारोह

विषय सूची

जल चेतना
खण्ड 14, अंक 1, जनवरी 2025
मूल्य : निशुल्क

संरक्षक की कलम से 3

विशेष अनुरोध 4

सम्पादकीय 5

आमुख कथाः हिमालय में हिमनदीय झील प्रस्फोट बाढ़ का उभरता खतरा 6
• डॉ. अनिल कुमार लोहनी

नर्मदा नदी का जलविज्ञानीय विश्लेषण 11
• पुष्पेन्द्र कुमार अग्रवाल

पश्चिमी राजस्थान के थार रेगिस्तान में जल जीवन मिशन की स्थिरता हेतु जल संचयन की महत्वपूर्ण तकनीकें 17
• वरूण गोयल, डॉ. वी.सी. गोयल, राजेश अग्रवाल एवं इं. ओमकार सिंह

वैश्विक जलवायु परिवर्तन का मानसून वर्षा पर प्रभाव 21
• डॉ. अश्विनी रानडे

कविताः जीवन का जल है आधार 27
• चारू पाण्डेय

यन्त्रीकरण द्वारा कृषि में जल संचयन 28
• डॉ. नवीन कुमार, डॉ. रामकृष्ण राय एवं डॉ. अभिषेक राणा

बढ़ता वायु प्रदूषण और मानव स्वास्थ्य 31
• डॉ. विनोद कुमार गुप्ता

जलवायु परिवर्तन के परिदृश्य में लद्दाख में गहराता जल संकट 37
• डॉ. राजेश कमार गोयल, डॉ. महेश कुमार गौड़ एवं डॉ. महेश्वर सिंह कंवर

पर्यावरण हमारी नीति में ही नहीं, हमारी रीति और प्रीति में भी शामिल हो 40
• आशीष दशोत्तर

वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद (CSIR) द्वारा जलशोधन की विभिन्न प्रौद्योगिकियों का विकास 44
• डॉ. डी.डी. ओझा

भारत में सुरक्षित और स्वस्थ पर्यावरण के लिए आर्द्रभूमि संरक्षण की आवश्यकता 49
• वैभव देवली, पंकज कुमार गुप्ता, अनुश्री मलिक

कविता : जल बचाओ 53
• प्रेम सागर उनियाल

जलवायु परिवर्तनः संपूर्ण विश्व की एक बड़ी आपदा 54
• गौरी शंकर वैश्व विनम्र

जल समाचार 59
• पुष्पेन्द्र कुमार अग्रवाल

कार्टून संकलन
• हंसराज

राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान

(जल शक्ति मंत्रालय, जल संसाधन, नदी विकास और गंगा संरक्षण विभाग, भारत सरकार)

राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान की स्थापना जलविज्ञान तथा जल संसाधन विकास के क्षेत्र में आधारभूत, अनुप्रयुक्त एवं सामरिक अनुसंधान को संचालित करने के उद्देश्य से जल संसाधन मंत्रालय के अधीन एक स्वायत्तशासी संगठन के रूप में सन् 1978 में की गई थी। यह संस्थान उत्तराखण्ड राज्य के हरिद्वार जनपद के अंतर्गत रूड़की शहर में स्थित है।

अभिदृष्टि (विजन)

भारतवर्ष में जल क्षेत्र में दीर्घकालिक विकास तथा आत्म निर्भरता सुनिश्चित करने के लिए प्रभावी अनुसंधान एवं विकास उपायों के माध्यम से जलविज्ञानीय शोध को नेतृत्व प्रदान करना।

मिशन

- जलविज्ञानीय अध्ययनों के लिए किफायती तकनीकों, प्रणालियों, सॉफ्टवेयर पैकेज, क्षेत्रीय मापयंत्रण आदि का विकास।
- निदर्शन तकनीकों के माध्यम से परिवर्तनशील जल–भूविज्ञानीय मौसम, सामाजिक–सांस्कृतिक परिस्थितियों के अंतर्गत जल संसाधन उपलब्धता के परिदृश्यों का अध्ययन।
- जल संसाधनों पर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों का आंकलन करना तथा न्यूनीकरण और अनुकूलन के लिए उपाय सुझाना।
- जल संसाधन विकास तथा प्रबंधन के लिए भावी प्रौद्योगिकियों के अनुप्रयोग का प्रचार करना।
- आवश्यकता–आधारित जल संबंधी समस्याओं के लिए किफायती अनुसंधान एवं विकास उपाय प्रदान करना।
- विभिन्न हिस्सेदारों को विश्वसनीय परामर्श देना।
- क्षमता विकास तथा जल संसाधन विकास एवं संरक्षण के प्रति जागरूक बनाकर समुदायों को समर्थ बनाना।

अनुसंधान के मुख्य विषय

- भूजल निदर्शन एवं प्रबन्धन।
- जल संसाधन नियोजन एवं प्रबन्धन।
- बाढ़ एवं सूखा भविष्यवाणी तथा प्रबंधन।
- हिम तथा हिमनद गलित प्रवाह आंकलन।
- अमापित बेसिनों में निस्सरण की भविष्यवाणी।
- विशिष्ट क्षेत्रों में जल गुणवत्ता निर्धारण।
- शुष्क, अर्ध–शुष्क तटीय तथा डेल्टाई क्षेत्रों का जलविज्ञान।
- जलाशय / झील अवसादन।
- जल संसाधनों पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव।
- जलविज्ञानीय समस्याओं के समाधान हेतु आधुनिक प्रौद्योगिकी का अनुप्रयोग।

अनुसंधान एवं विकास कार्य

- छोटे जलग्रहण क्षेत्रों के लिए क्षेत्रीय बाढ़ सूत्र।
- बड़े बाँधों के लिए बाँध भंग बाढ़ विश्लेषण।
- हिमालयी क्षेत्र में अमापित बेसिनों से जल लब्धि।
- सुदूर संवेदन तथा जी.आई.एस. के प्रयोग द्वारा बड़े जलाशयों का अवसादन विश्लेषण।
- बहुउद्देश्यीय तथा बहु–जलाशय तंत्रों का प्रचालन।
- छोटे जल विभाजकों से उपलब्धता तथा मृदा क्षरण।
- महानगरीय शहरों का जलगुणवत्ता विश्लेषण।
- भारतीय मानक ब्यूरो के लिए मानकों का विकास।
- जलविज्ञानीय विश्लेषण के लिए पद्धति।
- हिमालयी हिमनदों का जलविज्ञानीय विश्लेषण।
- नदियों के अन्तर्योजन का जलविज्ञानीय अध्ययन।
- सूखा प्रबन्धन तथा शमन अध्ययन।
- समस्थानिकीय तकनीकों के प्रयोग से झीलों में अवसादन दर का निर्धारण।
- भूजल पुनःपूरण एवं सिंचाई प्रतिगमन प्रवाह।
- रेडियल कलक्टर कूपों का अभिकल्पन।
- जलविज्ञानीय उपकरणों का विकास।
- समुद्र–जल के अवांछित प्रवेश का निर्धारण।

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें :–
डॉ. मनमोहन कुमार गोयल, निदेशक
राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, जलविज्ञान भवन
रूड़की – 247 667 (उत्तराखंड)
ई–मेल – mkg.nihr@gov.in
दूरभाष : +91 – 1332 – 272106,
फैक्स + 91 – 1332 – 272123
website : www.nihroorkee.gov.in

जलविज्ञान तथा जल संसाधन के क्षेत्र में अनुसंधान एवं विकास कार्यों के लिए प्रतिबद्ध

संरक्षक की कलम से ...

प्रिय पाठकों

जैसा कि हम सभी जानते हैं कि पृथ्वी पर सिर्फ मानवमात्र ही नहीं अपितु समस्त जीवधारियों एवं पेड़-पौधों के लिए जल प्रकृति प्रदत्त एक आवश्यक, अपरिहार्य एवं महत्वपूर्ण तत्व है। जल जीवन का आधार है, अतः इसके बिना जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। जल का उपयोग हम पेयजल, कृषि, उद्योग, स्वच्छता, ऊर्जा उत्पादन, पर्यावरण संरक्षण, स्वास्थ्य एवं अन्य अनेक कार्यों में करते हैं। विभिन्न कार्यों में जल की महती आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए जल का संरक्षण एवं संचयन करना हमारी नैतिक जिम्मेवारी बन जाती है। उल्लेखनीय है कि हमारे देश में जल प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है परंतु इसके समुचित संरक्षण, संचयन एवं प्रबंधन के अभाव में आज हमारे देश के कई हिस्सों को जल संकट का सामना करना पड़ रहा है। जनसंख्या वृद्धि एवं तीव्र शहरीकरण के कारण जल की बढ़ती मांग और प्राकृतिक संसाधनों के अतिदोहन के कारण से भूजल स्तर में निरन्तर कमी हो रही है जिसके परिणामस्वरूप भूमि और जल की उपलब्धता निरंतर घटती जा रही है। यह एक चिंता का विषय है।

आज पूरा विश्व अनेक प्राकृतिक आपदाओं और चुनौतियों का सामना कर रहा है। इनमें जल भी है जो यद्यपि प्रकृति द्वारा सर्वसुलभ और सर्व-सहज तत्व है फिर भी इसके संरक्षण को लेकर विश्व के समस्त देश चिंतित हैं। आज हमारे देश में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में शुद्ध जल की उपलब्धता में निरंतर कमी आ रही है। विभिन्न स्रोतों से प्रदूषक भार बढ़ने के करण सतही और भूजल संसाधनों की गुणवत्ता निरन्तर खराब हो रही है। आज हमें ऐसे जल की आवश्यकता है जो मानव उपभोग, कृषि, उद्योग और पर्यावरण के लिए उपयुक्त एवं पर्याप्त हो।

आज ग्लोबल वार्मिंग, यानि वैश्विक तापवृद्धि के कारण पृथ्वी के तापमान में धीरे-धीरे वृद्धि हो रही है जिससे मौसम के रुख और हमारे प्राकृतिक संसाधनों पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। इस बदलाव के कारण सूखा, बाढ़ एवं तूफान आदि जैसी घटनाएं बढ़ रही हैं। इस ग्लोबल वार्मिंग के लिए काफी हद तक मानवीय गतिविधियां जिम्मेवार हैं। ग्लोबल वार्मिंग को जीवाश्म ईंधन की खपत कम करके, वनस्पतियों का संरक्षण करके, ऊर्जा-कुशल प्रौद्योगिकियों का उपयोग करके कम कर सकते हैं।

हमारे देश के जल संसाधन, पेयजल एवं कृषि के साथ-साथ जलविद्युत उत्पादन, पशुधन उत्पादन, वानिकी, मत्स्य पालन, नौपरिवहन, मनोरंजक गतिविधियों और पारिस्थितिक आवश्यकताओं आदि जैसे विभिन्न क्षेत्रों में बढ़ती मांगों को पूर्ण करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यद्यपि आज हमारे वैज्ञानिकों, अभियंताओं, प्रशासकों एवं नियोजकों के निरंतर प्रयासों से देश के जल संसाधनों के समुचित उपयोग में उल्लेखनीय सुधार हुआ है तथापि जल गुणवत्ता को प्रभावित करने वाले कारकों यथा जल प्रदूषण, जल की कठोरता, जल में खनिजों की अत्यधिक मात्रा आदि कारकों को नियंत्रित करके जल संसाधन प्रबंधन एवं अनुसंधान पर विशेष ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। आज व्यर्थ बहने वाले जल को सतही एवं भूजल जलाशयों में एकत्र करना हमारी सर्वोच्च प्राथमिकता होनी चाहिए।

विगत 14 वर्षों से निरंतर प्रकाशित की जा रही प्रस्तुत पत्रिका का मुख्य उद्देश्य तकनीकी क्षेत्र में हो रहे शोध कार्यों की नित-नई जानकारी को हिंदी भाषा के माध्यम से आम-नागरिक तक पहुंचाना है। आज हमें जल के महत्व, उसके संरक्षण तथा जल की प्रत्येक बूंद के सदुपयोग की जानकारी आम-जनता को देने की आवश्यकता है। देश के हर नागरिक को जल संरक्षण से जुड़ना होगा क्योंकि इस संसाधन की सुरक्षा की जिम्मेवारी देश के हर नागरिक की है।

मुझे यह अवगत कराते हुए प्रसन्नता हो रही है कि राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, रुड़की सरकारी कामकाज में राजभाषा हिंदी के प्रगामी प्रयोग को समुचित बढ़ावा देने के लिए वर्षभर हिंदी की भिन्न-भिन्न गतिविधियां आयोजित करता रहता है। हिंदी में पत्रिकाओं का प्रकाशन भी इन्हीं गतिविधियों का एक हिस्सा है। हमारा प्रयास रहता है कि प्रशासनिक कार्यों के साथ-साथ तकनीकी एवं वैज्ञानिक प्रकृति के कार्यों में भी राजभाषा हिंदी का यथासंभव प्रयोग किया जाए। बड़े हर्ष का विषय है कि हमारे वैज्ञानिकगण, तकनीकी स्टाफ एवं अन्य सभी पदाधिकारी अपने रोजमर्रा के सामान्य प्रकृति के कार्यों में राजभाषा हिंदी का आवश्यकतानुसार प्रयोग कर रहे हैं।

इस पत्रिका के लिए जिन प्रबुद्ध लेखकों ने अपने रोचक, ज्ञानवर्धक एवं उपयोगी लेख भेजकर हमें सहयोग दिया है मैं उनका हृदय से आभार व्यक्त करता हूं। पत्रिका के प्रकाशन से जुड़े समस्त परामर्शदाता, समीक्षाकर्ता एवं संपादक मंडल के सदस्य बधाई के पात्र हैं।

मैं पत्रिका की अपार सफलता की कामना करता हूं।

(डा. मनमोहन कुमार गोयल)

विशेष अनुरोध

प्रिय पाठकों,

हम सभी जानते हैं कि प्राणियों के लिए जल प्रकृति प्रदत्त एक अनमोल उपहार है। धरती पर जीवन के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए जल का संचयन एवं संरक्षण अत्यन्त आवश्यक है। आज जल के अतिदोहन, बर्बादी एवं दुरूपयोग के कारण हमारा देश जल से जुड़ी भिन्न-भिन्न समस्याओं से जूझ रहा है। आज जल की समस्या किसी एक देश की नहीं अपितु संपूर्ण विश्व की समस्या बन गई है। हमारे देश में समय और स्थान के साथ-साथ जल से जुड़ी समस्याएं भिन्न-भिन्न हैं। एक ही समय में कहीं बाढ़ तो कहीं सूखा हमारे जीवन को प्रभावित कर रहे हैं। एक क्षेत्र में जहां जल के लिए घोर संघर्ष करना पड़ रहा है वहीं दूसरे क्षेत्र में अत्यधिक बारिश, बादल फटने और कुछ अन्य कारणों से बाढ़ का संकट पैदा हो गया है। आज जल का संकट केवल शहरों में ही नहीं बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों में भी व्याप्त है। हालत यह है कि देश में खाने के लिए अनाज तो है, किन्तु पीने के लिए शुद्ध जल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं है। आज हमें पीने के लिए जो जल मिलता है उसकी गुणवत्ता की भी कोई गारंटी नहीं है। आज हमारे सम्मुख जल की बर्बादी को रोकना, उसको सही ढंग से इस्तेमाल करना और उसकी गुणवत्ता को बरकरार रखने की गंभीर चुनौती है। जल से जुड़ी भिन्न-भिन्न समस्याओं एवं उनके उपायों को जन-जन तक पहुंचाने के उद्देश्य को ध्यान में रखकर हमारे संस्थान ने वर्ष 2011 से अपनी इस तकनीकी पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया है और तब से यह पत्रिका निरंतर छमाही आधार पर प्रकाशित की जा रही है।

जब से हमारे संस्थान ने अपनी इस तकनीकी पत्रिका ''जल चेतना'' को प्रकाशित करने का कार्य प्रारम्भ किया है, तब से निरन्तर हमारे पास बहुसंख्य प्रबुद्ध पाठकों के प्रशंसा पत्र, फोन तथा ईमेल आ रहे हैं। पाठकगण अपनी स्थानीय समस्याओं के बारे में लिखकर उनका समाधान जानने के लिए हमसे अनुरोध भी करते रहते हैं। इन्हीं समस्याओं के बारे में सुनकर हमें पूरे देश में दिनों-दिन बढ़ रहे जल संकट के संबंध में जानकारी मिलती है। हमारा ध्यान इन समस्याओं पर केन्द्रित है तथा हमारे वैज्ञानिक पूरी एकाग्रता और समर्पण भाव से इस दिशा में कार्य कर रहे हैं। पाठकों की सकारात्मक प्रतिक्रियाओं एवं उपयोगी सुझावों से ही राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान को अपनी इस तकनीकी पत्रिका ''जल चेतना'' को नियमित रूप से प्रकाशित करने में सहयोग मिल रहा है। इस पत्रिका में तकनीकी लेखों के साथ-साथ लघु लेख, कविता, प्रश्नोत्तरी, शिक्षा एवं रोजगार जैसे विषयों को भी शामिल किया जाता है।

सामान्य सरकारी कामकाज के साथ-साथ जल जैसे महत्वपूर्ण विषय से जुड़ी विभिन्न जानकारियों को हिंदी भाषा के माध्यम से जन मानस तक पहुंचाने का संस्थान का यह एक विशेष प्रयास है। किसी भी पत्रिका की श्रीवृद्धि एवं सफलता में सुधी पाठकों की प्रतिक्रियाओं एवं सुझावों का योगदान अपेक्षित होता है। अतः हमें समस्त पाठकों से उनकी प्रतिक्रियाओं एवं सुझावों की प्रतीक्षा रहेगी जिससे पत्रिका को और भी रोचक एवं उपयोगी बनाया जा सके।

हम आपसे विशेष आग्रह करते हैं कि आप सूचना प्रौद्योगिकी, नेनो प्रौद्योगिकी, जैव प्रौद्योगिकी तथा चिकित्सा विज्ञान के साथ-साथ भौतिक एवं रसायन विज्ञान में भी जल के उपयोग सम्बन्धित उपलब्धियों को केन्द्र बिन्दु बनाते हुए अपने लेख भेजने का कष्ट करें। हम उन सभी लेखकों के आभारी होंगे जो अपने लेख यूनिकोड प्रणाली या कृतिदेव-10 फोंट में पेज मेकर (6.5 या 7.0) अथवा माइक्रोसॉफ्ट वर्ल्ड का प्रयोग करते हुए हमें भेजने का कष्ट करेंगे। लेख तथ्यों पर आधारित एवं रंगीन चित्रों से सुसज्जित होना चाहिए। संदर्भ और आकड़ों की जिम्मेवारी स्वयं लेखक की होगी।

हमारा यह भी अनुरोध है कि किसी भी रचना को लिखने का कार्य प्रारंभ करने से पहले सुनिश्चित कर लें कि यह आपकी मौलिक रचना है और आसान भाषा में तथ्यों के आधार पर लिखी गई है। किसी भी केस स्टडी पर लेख लिखते समय आवश्यक है कि उस स्थान के बारे में फोटो/संदर्भ सहित संपूर्ण जानकारी उपलब्ध करायी जाए। पत्रिका में छपे लेखों के प्रबुद्ध लेखकों को राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान द्वारा निर्धारित दरों पर मानदेय का भुगतान किए जाने का भी प्रावधान है।

लेख भेजते समय अपना संपर्क सूत्र, ईमेल एड्रस एवं फोन नं. आदि अवश्य भेजें। कृपया रचना भेजते समय यह भी सुनिश्चित कर लें कि विस्तृत लेख की सामग्री कम से कम पांच पेज (टाइप की हुई) की अवश्य हो एवं चार-पांच कविताओं (कम से कम दो पेज) को मिलाकर भी एक रचना के रूप में भेजा जा सकता है। साथ ही अपने लेख से संबंधित कम से कम 10 फोटोग्राफ (हाई रिजोल्यूशन, जे.पी.ई.जी. फॉरमेट) उसके अनुशीर्षक (कैप्शन) सहित ई-मेल : jalchetna44@gmail.com पर भेजने का कष्ट करें।

सभी लेखकों से विनम्र अनुरोध है कि वे अपने बैंक एकाउंट की जानकारी निम्नानुसार देने का कष्ट करें ताकि मानदेय राशि को सीधे लेखक के एकाउंट में भेजा जा सके।

बैंक एकाउंट विवरण
बैंक का नाम एवं शाखा –
खाता संख्या –
IFSC कोड –
बैंक पासबुक के प्रथम पृष्ठ की फोटो कॉपी –
पैन (PAN) नं.

डॉ. सोबन सिंह रावत,
सम्पादक, जल चेतना
वैज्ञानिक एवं राजभाषा प्रभारी
राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान,
रूड़की-247667, जिला-हरिद्वार
(उत्तराखण्ड)
Email : jalchetna44@gmail.com
दूरभाष : 01332-249227

जनवरी 2025

संरक्षक
डॉ. मनमोहन कुमार गोयल

मुख्य संपादक
डॉ. अनिल कुमार लोहनी

परामर्शदाता
डॉ. सुरजीत सिंह
डॉ. मुकेश कुमार शर्मा
डॉ. मनीष कुमार नेमा
डॉ. प्रदीप कुमार
डॉ. दीपक सिंह बिष्ट

संपादक
डॉ. सोबन सिंह रावत

उप संपादक
प्रदीप कुमार उनियाल

सह संपादक
पवन कुमार

प्रकाशक
राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान,
जलविज्ञान भवन,
रूड़की-247667
उत्तराखंड

मुद्रक
राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान,
रूड़की

संपादकीय

तकनीकी पत्रिका ''जल चेतना'' का नवीन अंक अपने प्रबुद्ध पाठकों को सौंपते हुए हमें अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। विगत की तरह इस अंक में भी वैज्ञानिक तथा तकनीकी विषयों से जुड़ी विभिन्न जानकारियों को सरल, सुबोध एवं प्रचलित भाषा में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है ताकि हर वर्ग का पाठक जल संबंधी शोध एवं विकास कार्यों की नई-नई जानकारियों का लाभ उठा सके। हमें विश्वास है कि यह अंक भी हमारे पाठकों को रोचक, ज्ञानवर्धक एवं उपयोगी लगेगा। सुधी पाठकों की सकारात्मक प्रतिक्रिया और प्रबुद्ध लेखकों के सहयोग से ''जल चेतना'' पत्रिका के प्रकाशन का यह क्रम वर्ष 2011 से निरन्तर जारी है।

प्रस्तुत अंक में हिमालय में हिमनदीय झील प्रस्फोट बाढ़ का उभरता खतरा, नर्मदा नदी का जलविज्ञानीय विश्लेषण, वैश्विक जलवायु परिवर्तन का मानसून वर्षा पर प्रभाव, यन्त्रीकरण द्वारा कृषि में जल संचयन इत्यादि जैसे रोचक, महत्वपूर्ण एवं उपयोगी लेखों को शामिल किया गया है। जल से जुड़े लेखों के अलावा कुछ अन्य रोचक विषयों जैसे बढ़ता वायु प्रदूषण और मानव स्वास्थ्य, पर्यावरण नीति पर डॉ. खुशाल सिंह पुरोहित से आशीष दशोत्तर की बातचीत, जीवन का जल है आधार, जल समाचार आदि विषयों पर लिखे गए लेखों को भी सम्मिलित किया गया है।

जल समस्त प्राणियों के लिए अपरिहार्य तथा प्रकृति प्रदत्त एक अनमोल द्रव है जिसका अन्य कोई विकल्प नहीं है। आज जल संरक्षण को लेकर समूचा विश्व चिंतित है। यद्यपि प्रकृति ने हमें पर्याप्त मात्रा में जल सुलभ कराया है तथापि आज पूरे विश्व में जल का संकट गहराता जा रहा है। इसके लिए कई कारक जिम्मेवार हैं लेकिन जल का समुचित प्रबंधन न करना सबसे महत्वपूर्ण कारक है। जल से जुड़ी समस्याओं के समाधान के लिए यह आवश्यक है कि जनमानस को जल के विभिन्न पहलुओं की पर्याप्त जानकारी हो। आज जल के अनियंत्रित दोहन के कारण स्वच्छ जल की कुल उपलब्धता धीरे-धीरे घटी है। इसका एक अन्य प्रमुख कारण जल प्रदूषण भी है। आज शहरी क्षेत्रों में जनसंख्या वृद्धि के कारण जल की मांग में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। अतः इस पत्रिका के प्रकाशन का मुख्य उद्देश्य जल से संबंधित महत्वपूर्ण एवं उपयोगी जानकारियों को सामान्य जनमानस तक उनकी बोलचाल की भाषा के माध्यम से पहुंचाना है। जन जागरूकता अभियान तथा प्रचार-प्रसार की दृष्टि से यह पत्रिका निःशुल्क वितरित की जाती है।

संपादक मंडल उन समस्त विद्वत लेखकों का हृदय से आभार व्यक्त करता है जिन्होंने इस पत्रिका के लिए अपने रोचक एवं उपयोगी लेख देकर हमारा उत्साह बढ़ाया है। जल चेतना के इस अंक में जिन स्रोतों से चित्रों का संकलन किया गया है, संपादक मंडल उनका भी हार्दिक आभार व्यक्त करता है।

हमें विश्वास है कि यह पत्रिका पाठकों को अत्यन्त रोचक तथा उपयोगी लगेगी। पत्रिका के आगामी अंकों को और बेहतर बनाने तथा सामग्री व साज-सज्जा में अपेक्षित सुधार लाने के लिए समस्त सुधी पाठकों से उनके महत्वपूर्ण सुझाव आमंत्रित हैं।

जल चेतना

मूल्य : निःशुल्क
शिकायत: 01332-249228, 249227
ई–मेल : jalchetna44@gmail.com

सम्पादकीय : 01332-249214, 249227,
फैक्स : 01332-272123
ई–मेल : jalchetna44@gmail.com
वेब साइट : www.nihroorkee.gov.in

© राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान
पत्रिका में प्रकाशित आलेख एवं रचनाओं में प्रस्तुत तथ्य लेखकों के अपने विचार हैं, संपादक मंडल का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।
पत्रिका से सम्बन्धित सभी विवाद रूड़की न्यायालय द्वारा ही निपटाए जायेंगे।

डॉ. अनिल कुमार लोहनी

हिमालय में हिमनदीय झील प्रस्फोट बाढ़ का उभरता खतरा

भारत के हिमालय क्षेत्र में, जलवायु परिवर्तन के कारण विगत कुछ दशकों में हिमनदों के जीवन चक्र पर गहरा प्रभाव पड़ा है। ऐसा माना जाने लगा है कि तापमान में वृद्धि से हिमनदगलन की दर तीव्र हो गई है, जिससे हिमनदीय झीलों के जल स्तर में वृद्धि हुई है। हिमालयी क्षेत्र में हजारों झीलें स्थित हैं, लेकिन उनमें से कुछ को उच्च संवेदनशील और जोखिमयुक्त झीलों की श्रेणी में रखा गया है। विगत कुछ वर्षों में इन झीलों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, जो जलवायु परिवर्तन का प्रत्यक्ष परिणाम हो सकती है।

हिमालय क्षेत्र, हजारों हिमनदों और हिमनदीय झीलों का आवास स्थल है। विगत कुछ दशकों में, जलवायु परिवर्तन ने इन हिमनदों के जीवन चक्र को गहराई से प्रभावित किया है। बढ़ते तापमान के कारण हिमनदगलन की दर तीव्र हो गई है, जिससे हिमनदीय झीलों की संख्या और जल स्तर में अत्यधिक वृद्धि हुई है। ये झीलें प्राकृतिक पारिस्थितिकीय तंत्र का भाग हैं, लेकिन इनका निर्माण और विस्तार निचले क्षेत्रों में रहने वाले समुदायों और पारिस्थितिकी तंत्र के लिए गंभीर खतरा बन सकता है। विगत कुछ वर्षों में इन झीलों की संख्या में वृद्धि देखी गई है, जो जलवायु परिवर्तन का परिणाम हो सकती है। इनमें से कुछ झीलें संवेदनशील श्रेणी में आती हैं। जब ये झीलें अचानक टूटती हैं, तो विनाशकारी घटना उत्पन्न करती हैं जिसे हिमनदीय झील प्रस्फोट बाढ़ (GLOF) कहा जाता है। इन हिमनदीय झीलों के अचानक टूटने से भारी मात्रा में जल और मलवा नदियों में बहकर बाढ़ के गंभीर खतरे को उत्पन्न करता है। इन झीलों के टूटने के संभावित कारणों में मुख्य रूप से झीलों का हिमनदों के मुहाने पर स्थित होना, जल स्तर का अत्यधिक बढ़ना, भूकंप, या हिमनद का झील में गिरना शामिल हो सकते हैं। खासकर वे झीलें जो हिमनदों के मुहाने पर स्थित होती हैं और हिमनद द्वारा छोड़े गए मलबे के पीछे निर्मित होती हैं, अधिकतर अधिक मात्रा में जल संचयन करती हैं जो उन्हें अत्यधिक खतरनाक बना देता है। इन झीलों के टूटने से अत्यधिक मात्रा में जल अल्पावधि में निचले क्षेत्रों में बहकर बाढ़ का खतरा पैदा करता है।

झीलों के टूटने से उत्पन्न बाढ़ का प्रवाह सामान्य बाढ़ की तुलना में कई गुणा अधिक हो सकता है। हिमनदीय झील प्रस्फोट बाढ़ की विनाशकारी तीव्रता बहुत अधिक होती है, क्योंकि इसमें केवल जल ही नहीं, बल्कि भारी मात्रा में मलवा और बड़ी-बड़ी चट्टानें भी प्रवाहित होती हैं। यही विशेषता इसे अत्यधिक विनाशकारी बनाती है, और इसका प्रभाव क्षेत्र पर सामान्य बाढ़ की तुलना में बहुत अधिक विस्तारित हो जाता है। झीलों के टूटने के प्रमुख कारणों में झीलों का हिमनदों के मुहाने पर स्थित होना, जल स्तर का अत्यधिक बढ़ना, भूकंप जैसी भौगोलिक हलचलें, और कभी-कभी हिमनदों का झील में गिरना शामिल हैं।

भारत के हिमालय क्षेत्र में, जलवायु परिवर्तन के कारण विगत कुछ दशकों में हिमनदों के जीवन चक्र पर गहरा प्रभाव पड़ा है। ऐसा माना जाने लगा है कि तापमान में वृद्धि से हिमनदगलन की दर तीव्र हो गई है, जिससे हिमनदीय झीलों के जल स्तर में वृद्धि हुई है। हिमालयी क्षेत्र में हजारों झीलें स्थित हैं, लेकिन उनमें से कुछ को उच्च संवेदनशील और जोखिमयुक्त

झीलों की श्रेणी में रखा गया है। विगत कुछ वर्षों में इन झीलों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, जो जलवायु परिवर्तन का प्रत्यक्ष परिणाम हो सकती है।

केदारनाथ में 2013 का हिमनदीय झील प्रस्फोट एक विनाशकारी घटना थी जिसने उत्तराखंड राज्य को हिला कर रख दिया। इस आपदा का मुख्य कारण चौराबाड़ी हिमनद का पिघलना और भारी वर्षा थी, जिससे मंदाकिनी नदी का जलस्तर अचानक बढ़ गया। इस बाढ़ ने केदारनाथ धाम और आसपास के क्षेत्रों में भारी तबाही मचाई। मंदाकिनी नदी का जल तेजी से बहते हुए केदारनाथ मंदिर तक पहुंच गया, जिससे अनेक गांव और बुनियादी संरचनाएं नष्ट हो गईं। इस आपदा में हजारों लोग मारे गए और अनेक लोग लापता हो गए। अक्टूबर 2023 में, सिक्किम में दक्षिण ल्होनक झील के तटबंध के टूटने के बाद हिमनदीय झील प्रस्फोट बाढ़ आई। इस बाढ़ ने तीस्ता नदी के पूरे क्षेत्र में विनाशकारी क्षति पहुंचाई, जिससे भूमि और संपर्क बुनियादी संरचना को भारी हानि हुई और अनेक लोगों की जान भी चली गई। इन घटनाओं ने हिमालयी क्षेत्रों में जलवायु परिवर्तन और हिमनद झीलों के खतरों के प्रति लोगों की जागरूकता बढ़ाई है। इसके बाद से, सरकार और विभिन्न संगठनों ने हिमनद झीलों के प्रबोधन और आपदा प्रबंधन के लिए अनेक कदम उठाए हैं।

इन घटनाओं से ज्ञात होता है कि हिमनदीय झील प्रस्फोट बाढ़ की प्रकृति इतनी विनाशकारी होती है कि यह अपने साथ बड़ी-बड़ी चट्टानों और भारी मलवे को भी बहाकर ले जाती है। यह बाढ़ न केवल खेतों और घरों को तहस-नहस कर देती है, बल्कि बुनियादी संरचनाओं जैसे पुल, सड़कें, और जल विद्युत परियोजनाओं को भी भारी नुकसान पहुंचाती है। इस प्रकार, हिमनदीय झील प्रस्फोट बाढ़ को हिमालयी क्षेत्र में एक उभरती हुई प्राकृतिक आपदा के रूप में देखा जाता है, जो जलवायु परिवर्तन और अन्य भौगोलिक कारकों के कारण अधिक गंभीर होती जा रही है। इसका प्रभाव व्यापक और दीर्घावधि तक रहने वाला हो सकता है, जिससे इसे रोकने और इसके जोखिम को कम करने के लिए प्रभावी उपायों की सख्त आवश्यकता होती है।

हिमनद, हिमनद झीलें और हिमनद झील प्रस्फोट बाढ़ (GLOF)

हिमनद, हिम के चलने वाले पिंड होते हैं, जो सामान्यतः हिम रेखा के ऊपर पाए जाते हैं। हिमनद पारिस्थितिकी तंत्र की स्थिरता बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं क्योंकि वे बफर के रूप में कार्य करते हैं और शुष्क और आर्द्र दोनों मौसमों के दौरान पहाड़ों से मैदानों तक जल की आपूर्ति को नियंत्रित करते हैं। हिमालयी हिमनद विश्व के गैर-ध्रुवीय हिमनदों के लगभग 70% भाग से निर्मित हैं और चीन, भारत, पाकिस्तान, अफगानिस्तान, नेपाल, भूटान और बांग्लादेश जैसे कई देशों में लाखों लोगों के जीवन को प्रभावित करते हैं। उनका प्रवाह विश्व की दो सबसे बड़ी नदियों, सिंधु और गंगा को पोषित करता है, जिनकी सहायक नदियाँ उत्तरी भारतीय मैदानों में लगभग 500 मिलियन लोगों के लिए बहुमूल्य जल लाती हैं। हिमालय में अधिकांश हिमनद ग्रीष्मकालीन संचयन प्रकार के होते हैं, जिसमें प्रमुख संचयन और अपक्षय गर्मियों के दौरान एक साथ होते हैं। उनके घटने के तरीकों और आयामों के आधार पर, हिमनदों को मुख्य तौर पर तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है। घाटी हिमनद, पाइडमोंट हिमनद और महाद्वीपीय हिमनद। हिमालयी हिमनद, घाटी हिमनद की श्रेणी में आते हैं। यह अनुमान लगाया गया है कि हिमालय में लगभग 32,000 वर्ग किमी क्षेत्र स्थायी रूप से बर्फ और हिम के आवरण में है। यह हिमालय के कुल भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 17% है। हिमालय में हिमनदों की उच्च सांद्रता उन क्षेत्रों में पाई जाती है जहाँ सबसे ऊँचे पर्वत शिखर हैं, जैसे नंगा पर्वत, नुन कुन, किन्नर कैलाश, नंदा देवी, नंदा कोट, अन्नपूर्णा, माउंट एवरेस्ट, मकालू और कंचनजंगा। हिमालयी पर्वत श्रृंखलाओं में कई छोटे, मध्यम और बड़े आकार के हिमनद हैं जिनमें विशिष्ट स्थलाकृतिक विशेषताएं हैं। कुछ प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण हिमनदों में बाल्टोरो हिमनद, गंगोत्री हिमनद, गशरब्रुम हिमनद, सियाचिन हिमनद, कंचनजंगा हिमनद और हिस्पर हिमनद शामिल हैं।

हिमगलन द्वारा झीलों का निर्माण।

हिमनद झीलें

हिमनद झील को उस जल राशि के रूप में परिभाषित किया जाता है जो पर्याप्त मात्रा में मौजूद होती है और हिमनद के अंदर, नीचे, निकट में और/या सामने एक मुक्त सतह के साथ फैली होती है और हिमनदीय गतिविधियों और/या पीछे हटने की प्रक्रियाओं से उत्पन्न होती है। पहाड़ों और घाटियों में पाए जाने वाली अलग-थलग झीलें हिमनदीय मूल की नहीं हो सकती हैं। वैश्विक ऊष्णता के कारण बर्फ और हिम के तेजी से पिघलने की दर के परिणामस्वरूप, इन में से कुछ झीलों में जल संचय तेजी से बढ़ रहा है। 3,500 मीटर से ऊपर की अलग-थलग झीलों को हिमनदों के पीछे हटने के कारण छोड़ी गई हिमनद झीलों का अवशेष माना जाता है।

हिमनद झीलों से जल का अचानक बहाव और तत्काल निर्वहन बाढ़ का कारण बन सकता है, जिससे अनुप्रवाह क्षेत्रों/परियोजनाओं में भारी नुकसान हो सकता है। विभिन्न प्रकार की झीलों में विभिन्न स्तर के खतरे की संभावनाएं हो सकती हैं, जैसे कि मोरेन बांधित झीलें जो हिमनद के सिरे पर स्थित होती हैं, उनमें टूटने की उच्च संभावना होती है, इसलिए उनमें उच्च खतरे की संभावना हो सकती है; जबकि, अपरदन झीलों में टूटने की संभावना कम होती है, इसलिए उनमें कम खतरे की संभावना होती है। हिमनद झीलों से संभावित खतरों का आंकलन करने के लिए, उच्च ऊंचाई पर बनी हिमनद झीलों की एक व्यवस्थित सूची निर्मित करना आवश्यक है। इसे उपग्रह चित्रों (और यदि उपलब्ध हो तो हवाई तस्वीरों) के माध्यम से प्रारंभिक रूप से पहचान कर और बाद में उनके क्षेत्रीय स्थिति का आंकलन करके पूर्ण किया जा सकता है। अस्थायी सूची बनाने के अलावा, इन झीलों की प्रकृति और हवाई विस्तार में परिवर्तन का आंकलन करने के लिए इनका पुनरावृत्ति प्रबोधन किया जाना भी आवश्यक है। हिमनद झीलों को उनकी भौगोलिक स्थिति, संरचना, और आकार के आधार पर अपरदन (घाटी गर्त और सर्क), बर्फ अवरुद्ध, मोरेन बांधित (लैटरल मोरेन और एंड मोरेन बांधित झीलें), और सुप्राग्लेशियल झीलों में वर्गीकृत किया गया है।

ये झीलें प्राकृतिक रूप से हिमनदों और उनके आसपास बनने वाली भौगोलिक प्रक्रियाओं का परिणाम होती हैं। इनके प्रमुख प्रकार और

विशेषताओं का विस्तृत वर्णन निम्न खण्डों में किया गया है:

अपरदन झीलें: हिमनद अपरदन झीलें वे जल निकाय हैं जो हिमनदों के पीछे हटने के बाद एक अवसाद के कारण निर्मित होती हैं। ये सर्क प्रकार और घाटी गर्त प्रकार की स्थिर झीलें होती हैं। ये अपरदन झीलें वर्तमान क्षेत्रों से अलग-थलग और दूर हो सकती हैं।

सर्क झीलः यह एक हिमनद झील है जो पहाड़ी क्षेत्रों के ऊपरी भाग में बनती है जहाँ झीलें हिमनदों की अपरदन क्रिया द्वारा निर्मित एम्फीथिएटर के आकार के अवसादों में स्थित होती हैं।

घाटी गर्त झीलः घाटी में हिमनद द्वारा घाटी के फर्श के अपक्षय के कारण बनती है। ये झीलें तब बनती हैं जब बर्फ घाटी के फर्श को आसपास के क्षेत्र की तुलना में थोड़ा गहरा कर देती है जिससे एक चट्टानी बेसिन बनता है। ये हिमनद पीछे हटने के बाद झील के लिए एक आदर्श स्थान छोड़ देते हैं।

सुप्राग्लेशियल झीलें

सुप्राग्लेशियल झीलें बर्फ के पिंड के भीतर मोरेन से दूर 50 से 100 मीटर के आयामों के साथ विकसित होती हैं। ये झीलें हिमनद के किसी भी स्थान पर विकसित हो सकती हैं लेकिन झील का विस्तार घाटी हिमनद की चौड़ाई के आधे से कम होता है। झीलों का स्थानांतरण, विलय और जल निकासी सुप्राग्लेशियल झीलों की विशेषताएं हैं। झीलों के विलय से झील के क्षेत्र का विस्तार और जल की एक बड़ी मात्रा का भंडारण होता है जिससे इसे उच्च स्तर की संभावित ऊर्जा मिलती है। हिमनद झील के विलय और विस्तार की प्रवृत्ति हिमनदीय झील विस्फोट बाढ़ के खतरे के स्तर को इंगित करती है।

मोरेन बांधित झीलें

मोरेन एक सामान्य शब्द है जिसका उपयोग किसी भी हिमनद मूल के संचयन के लिए किया जाता है जिसमें बोल्डर, रेत, और बजरी शामिल हैं, जो उस सतह पर छोड़ी जाती है जहाँ पहले एक हिमनद मौजूद था। एक पीछे हटते हुए हिमनद में, हिमनद बर्फ, हिमनद के सबसे निचले भाग में पिघलने की प्रवृत्ति रखती है जो लेटरल मोरेन और एंड मोरेन से घिरी होती है। परिणामस्वरूप, हिमनद की जीभ पर कई सुप्राग्लेशियल तालाब बनते हैं। ये तालाब कभी-कभी आपस में जुड़कर एक बड़ी झील बन जाते हैं और आगे गहराई की प्रवृत्ति रखते हैं, जिससे मोरेन बांधित झील का जन्म होता है। ये झीलें हिमगलित जल और हिमनद के पीछे के जल निकासी क्षेत्र में एकत्र वर्षा जल से भरी होती हैं और सर्दियों के मौसम में भी झील के आउटलेट से जल प्रवाह शुरू कर देती हैं। मोरेन के दो प्रकार होते हैं, एक बर्फ-कोर मोरेन और एक बर्फ-मुक्त मोरेन। हिमनद की बर्फ के पूर्णतः गलित होने से पहले, मोरेन और झील के तल के नीचे हिमनद की बर्फ मौजूद होती है। मोरेन और झील के नीचे कोर की गई बर्फ को कभी-कभी मृत बर्फ या जीवाश्म बर्फ कहा जाता है। जैसे-जैसे हिमनद की बर्फ पिघलती रहती है, झील गहरी और चौड़ी होती जाती है। अंततः, जब मोरेन और झील के नीचे की बर्फ पूरी तरह से पिघल जाती है, तो झील के जल को रोकने वाली सामग्री केवल बेडरॉक और मोरेन होती है।

केटल झीलें

ये झीलें उन अवसादों में स्थित होती हैं जो बड़े बर्फ के टुकड़ों के पिघलने से उत्पन्न होती हैं जो उनके मूल हिमनद के पिघलने पर ग्राउंड मोरेन के भीतर छोड़ दी जाती हैं। केटल झीलें जरूरी नहीं कि हिमनद के पीछे हटने के तुरंत बाद बनें। यदि बर्फ का टुकड़ा बहाव के एक ओवरबर्डन द्वारा इन्सुलेट किया जाता है, तो यह अपने मूल हिमनद के विलुप्त होने के बाद भी दीर्घावधि तक बना रह सकता है।

ब्लॉकिंग झीलें

ब्लॉकिंग झीलें हिमनद और अन्य कारकों के माध्यम से बनती हैं, जिसमें मुख्य हिमनद शाखा घाटी को अवरुद्ध करता है और हिमस्खलन और मलबे के प्रवाह अवरोध के माध्यम से हिमनदीय झीलें निर्मित होती हैं।

बर्फ-बांधित झीलें (पेरिग्लेशियल झीलें)

बर्फ-बांधित झील तब बनती है जब एक अग्रसर हिमनद मुख्य हिमनद घाटी में प्रवाहित होने वाली सहायक नदियों को अवरुद्ध कर देता है। इस प्रकार, एक बर्फ कोर-बांधित झील आमतौर पर आकार में छोटी होती है और हिमनद की बर्फ के संपर्क में नहीं आती है। इस प्रकार की झील मोरेन-बांधित झील की तुलना में हिमनदीय झील विस्फोट बाढ़ के प्रति कम संवेदनशील होती है। एक हिमनद झील केवल हिमनद के उतार-चढ़ाव के एक निश्चित चरण तक ही निर्मित होती है। यदि किसी व्यक्तिगत हिमनद के जीवनकाल का अनुसरण किया जाए, तो पाया जाता है कि मोरेन बांधित हिमनद झीलें समय के साथ निर्मित होती और विलुप्त हो जाती हैं। मोरेन बांधित झीलें तब विलुप्त हो जाती हैं जब वे पूरी तरह से नष्ट हो जाती हैं या जब मलबा झीलों को पूरी तरह से भर देता है या जब मातृ हिमनद फिर से मोरेन-बांध स्थिति से परे निचली ऊंचाई पर अग्रसर होता है। ऐसी हिमनद झीलें अनिवार्य रूप से अल्पकालिक होती हैं और हिमनदों के जीवन के दृष्टिकोण से स्थिर नहीं होती हैं। सामान्यतः, मोरेन बांधित झीलें बेसिन में खतरा पैदा करती हैं।

हिमनद गलन झील प्रस्फोट बाढ़ (GLOF) का चित्रण।

हिमालय में स्थित हिमनद और हिमनद झीलें

हिमालय के हिमनद (ग्लेशियर) भारत की प्रमुख नदियों के उद्गम स्थल हैं और उत्तर और पूर्वी भारत के जल संसाधनों के प्रमुख स्रोत हैं। ध्रुवीय क्षेत्रों के बाहर, हिमालय को विश्व में सबसे अधिक हिमनदों का आवास स्थल माना जाता है। आंकड़ों के अनुसार, हिमालय का लगभग 17 प्रतिशत क्षेत्र हिमनदों से आच्छादित है, जबकि 30 से 40 प्रतिशत पर्वतीय क्षेत्रों में मौसमी हिमपात होता है।

एक अनुमान के अनुसार, केवल भारतीय हिमालय में लगभग 9,500 हिमनद स्थित हैं। हिंदूकुश-हिमालय क्षेत्र में लगभग 8,000 हिमनदीय झीलें हैं, जिनमें से लगभग 200 या उससे अधिक को अत्यधिक खतरनाक श्रेणी में रखा गया है। ये झीलें भारी बर्फबारी, मूसलाधार बारिश और तूफानों के दौरान विखंडित हो सकती हैं और विनाशकारी फ्लैश फ्लड का कारण बन सकती हैं।

हिमालय क्षेत्र में हिमनद झीलों की घटना और विस्तार का प्रबोधन और अध्ययन करना चुनौतीपूर्ण है। उपग्रह सुदूर संवेदी तकनीक अपनी व्यापक कवरेज और पुनरीक्षण क्षमता के कारण हिमनद झीलों में दीर्घकालिक परिवर्तनों का आंकलन, हिमनदों के पीछे हटने की दरों को समझने, हिमनदों के जोखिमों का आंकलन करने और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए महत्वपूर्ण है।

भारतीय अन्तरिक्ष अनुसंधान संगठन (ISRO) के अनुसार विगत 3

से 4 दशकों के उपग्रह आंकड़े अभिलेखागार हिमनद वाले वातावरण में होने वाले परिवर्तनों के बारे में बहुमूल्य जानकारी प्रदान करते हैं। 1984 से 2023 तक भारतीय हिमालयी नदी घाटियों के जलग्रहण क्षेत्रों को आच्छादित करने वाली दीर्घकालिक उपग्रह चित्र, हिमनद झीलों में महत्वपूर्ण परिवर्तनों को दर्शाते हैं। 2016-17 के दौरान चयनित की गई 10 हेक्टेयर से बड़ी 2,431 झीलों में से 676 हिमनद झीलें 1984 के बाद से उल्लेखनीय रूप से विस्तारित हुई हैं। विशेष रूप से, इनमें से 130 झीलें भारत में स्थित हैं, जिनमें से 65, 7 और 58 झीलें क्रमशः सिंधु, गंगा और ब्रह्मपुत्र नदी घाटियों में स्थित हैं।

हाल के दशकों में जलवायु परिवर्तन ने हिमालयी हिमनदों के जीवन चक्र को गंभीर रूप से प्रभावित किया है। बढ़ते तापमान के कारण बर्फ के तेजी से पिघलने की प्रवृत्ति देखी गई है, जिससे हिमनदों के पास नई झीलों का निर्माण हुआ है और मौजूदा झीलों में जल स्तर बढ़ा है। हालांकि, ऐसी प्रवृत्ति के लिए विश्वसनीय आंकड़े सीमित हैं, लेकिन यह स्पष्ट है कि इन झीलों में अतिरिक्त जल का प्रवाह या उनका अचानक टूटना गंभीर चिंता का विषय बन सकता है।

जब ये झीलें अपने पत्थरों और कंकड़ों से बने प्राकृतिक किनारों को तोड़ती हैं, तो वे बड़ी मात्रा में जल और मलबा निचले क्षेत्रों में बहाकर व्यापक तबाही मचा सकती हैं। यह स्थिति न केवल जलवायु संकट को दर्शाती है, बल्कि इसके प्रभाव क्षेत्र में बसे समुदायों और अधिसंरचना के लिए भी गंभीर खतरा पैदा करते हैं। इसलिए, इन हिमनद झीलों का प्रबोधन और उनका प्रबंधन आज के समय की महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है।

हिमनदीय झील प्रस्फोट बाढ़ अध्ययन क्यों और कैसे?

बाढ़ के पूर्वानुमान के लिए इन झीलों की संख्या, इनमें जल की मात्रा एवं इनके विस्फोट से आई बाढ़ का विश्लेषण करना आवश्यक है। इन झीलों के दूरस्थ स्थानों एवं दुर्गम क्षेत्रों में होने के कारण, सुदूर संवेदन तकनीक काफी प्रभावशाली है। इस तकनीक द्वारा समय-समय पर झीलों की संख्या का आंकलन किया जा चुका है। राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान ने उत्तर पूर्वी हिमालय में सिक्किम एवं अरूणाचल प्रदेश, गढ़वाल हिमालय के कुछ क्षेत्र तथा भूटान स्थित कुछ बेसिनों में हिमालयी झीलों की प्रस्फोट बाढ़ का अध्ययन किया है इन झीलों में से किस झील से ज्यादा खतरा है या किस झील के शीघ्र टूटने की आशंका है, का पता लगाना बहुत आवश्यक है। संवेदनशील झीलों पर समय-समय पर दृष्टि रखना आवश्यक है। इनके आकार में परिवर्तन या इनके आस-पास के क्षेत्र में हो रही गतिविधियों में परिवर्तन के अध्ययन के लिये सुदूर संवेदन तकनीक द्वारा या अगर सम्भव हो तो क्षेत्र में जाकर स्थलीय अध्ययन किए जाते रहने चाहिये। इसी को ध्यान में रखते हुए विगत कुछ वर्षों में झीलों के प्रस्फोट बाढ़ अध्ययन में वृद्धि हुई है।

घाटी में प्रवाहित होने वाली नदियों पर स्थित बांध एवं स्थानीय परियोजनाओं के निर्माण के समय इन हिमनद झीलों का विश्लेषण करना अति आवश्यक है। जब भी कोई जल विद्युत परियोजना बनाई जाती है तो इसके लिये अभिकल्प बाढ़ का आंकलन किया जाता है परन्तु जलवायु परिवर्तन के कारण हो रहे बदलाव को ध्यान में रखते हुए झीलों के टूटने से उत्पन्न प्रवाह का हिमनदीय झील प्रस्फोट बाढ़ आंकलन भी आवश्यक हो गया है। राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान में विगत कुछ वर्षों में भारत एवं भूटान स्थित अनेक विद्युत परियोजनाओं के लिये हिमनदीय झील प्रस्फोट बाढ़ संबंधित अध्ययन किये गए हैं तथा हिमनदीय झील विस्फोट बाढ़ की मात्रा का आंकलन किया गया है। इसमें सुदूर संवेदन प्रणाली तथा भौगोलिक सूचना तंत्र प्रणाली द्वारा इन परियोजनाओं के जलग्रहण क्षेत्र में स्थित संवेदनशील झीलों का पता लगाना तथा संवेदनशील झील के निदर्शन द्वारा इससे उत्पन्न प्रवाह के बारे में जानकारी प्रदान करना शामिल है। इन झीलों से प्रवाहित जल के परियोजना तक पहुँचने का समय झीलों से परियोजना की दूरी पर निर्भर करता है यह समय मिनटों से लेकर 3-4 घंटे तक हो सकता है।

हिमनदीय झील विस्फोट बाढ़ प्रबंधन रणनीतियाँ

हिमनदीय झील प्रस्फोट बाढ़ के प्रभावों को कम करने के लिए कई संभावित तकनीकें उपलब्ध हैं, जैसे प्रबोधन और प्रारंभिक चेतावनी प्रणाली। हिमनदीय झील विस्फोट बाढ़ जोखिम को कम करने के लिए सबसे महत्वपूर्ण संरचनात्मक उपाय झील में जल की मात्रा को कम करना है ताकि चरम बाढ़ प्रवाह को कम किया जा सके। सामान्यतः निम्नलिखित तकनीकों में से किसी एक तकनीक का उपयोग झील में जल की मात्रा को कम करने के लिए किया जा सकता हैः नियंत्रित ब्रेकिंग, आउटलेट नियंत्रण संरचना का निर्माण, झील से पानी को पंप या साइफन करना, और मोरेन बाधा या बर्फ के बांध के नीचे एक सुरंग बनाना। झील के प्रस्फोट बाढ़ अध्ययन के लिए मातृ हिमनद, बांध सामग्री, और आसपास की स्थितियों के विस्तृत अध्ययन के साथ इसका सावधानीपूर्वक मूल्यांकन अत्यन्त आवश्यक है जिससे उपयुक्त बाढ़ प्रबंधन तकनीक का चयन किया जा सके। झील क्षेत्र के आसपास के किसी भी मौजूदा और संभावित बड़े हिम और बर्फ के हिमस्खलन, स्लाइड, या चट्टान गिरने के स्रोत का विस्तृत अध्ययन करना भी आवश्यक है, जिसका झील और बांध पर सीधा प्रभाव पड़ता है।

गैर-संरचनात्मक और संगठनात्मक

हिमालय के हिमनद (ग्लेशियर) भारत की प्रमुख नदियों के उद्गम स्थल हैं और उत्तर और पूर्वी भारत के जल संसाधनों के प्रमुख स्रोत हैं। ध्रुवीय क्षेत्रों के बाहर, हिमालय को विश्व में सबसे अधिक हिमनदों का आवास स्थल माना जाता है। आंकड़ों के अनुसार, हिमालय का लगभग 17 प्रतिशत क्षेत्र हिमनदों से आच्छादित है, जबकि 30 से 40 प्रतिशत पहाड़ी क्षेत्रों में मौसमी हिमपात होता है।

केदारनाथ आपदा के दौरान बाढ़ का एक दृश्य।

हिमालय क्षेत्र में हिमनद झीलों की घटना और विस्तार का प्रबोधन और अध्ययन करना चुनौतीपूर्ण है। उपग्रह सुदूर संवेदी तकनीक अपनी व्यापक कवरेज और पुनरीक्षण क्षमता के कारण हिमनद झीलों में दीर्घकालिक परिवर्तनों का आंकलन, हिमनदों के पीछे हटने की दरों को समझने, हिमनदों के जोखिमों का आंकलन करने और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए महत्वपूर्ण है।

केदारनाथ आपदा के कारण अनुप्रवाह क्षेत्र में बाढ़ का एक दृश्य

बाढ़ प्रबंधन उपाय, संरचनात्मक उपायों के पूरक हो सकते हैं। विशेष रूप से, दूरस्थ और दुर्गम क्षेत्रों में तथा गैर सरकारी संगठन और क्षेत्र में अन्य सामाजिक समाज में अक्सर संरचनात्मक उपायों की तुलना में अधिक लागत प्रभावी गैर-संरचनात्मक शमन उपाय उपयोगी हो सकते हैं। अनुप्रवाह क्षेत्रों में बुनियादी ढांचे और बस्तियों के निर्माण से पूर्व, दौरान, और बाद में प्रबोधन प्रणाली का प्रयोग किया जाना चाहिए। हिमनदीय झील प्रस्फोट बाढ़ प्रबंधन में इन घटनाओं के जोखिम को कम करने के लिए रणनीतियों का संयोजन शामिल है, जिसमें शामिल हैं:

प्रबोधनः संभावित खतरनाक झीलों और नदी प्रणालियों की निगरानी के लिए बहु-चरणीय दृष्टिकोण का उपयोग करें। इसमें हिमनदों और झीलों का अंकीय आंकड़ा बेस बनाना, सुदूर संवेदी आंकड़ों का उपयोग करना और हवाई तस्वीरें लेना शामिल हो सकता है।

पूर्व चेतावनी प्रणालीः बाढ़ के आगमन के समय और गहराई का अनुमान लगाने के लिए जलगतिकीय निदर्श का उपयोग करें।

सामुदायिक भागीदारीः हिमनदीय झील विस्फोट बाढ़ की प्रतिक्रिया में स्थानीय समुदायों को शामिल करें, क्योंकि वे अक्सर सबसे पहले प्रतिक्रिया देते हैं।

खतरे का मानचित्रणः हिमनदीय झील विस्फोट बाढ़ से जुड़े खतरों के मानचित्र बनाएं।

संरचनात्मक उपायः झील के जल स्तर को कम या नियंत्रित करें, और बांधों और अनुप्रवाह चैनलों को स्थिर करें।

जोखिम आंकलनः जोखिम का व्यापक आंकलन करें।

आपातकालीन तैयारीः आपात स्थितियों के लिए तैयार रहें।

उपसंहार

जलवायु परिवर्तन और हिमनदों के पीछे हटने के कारण हिमनद झीलें तेजी से बढ़ रही हैं। वैश्विक तापमान में वृद्धि के परिणामस्वरूप, हिमनद झीलों की संख्या और आकार बढ़ रहे हैं, और उच्च पर्वतीय क्षेत्रों में हिमनद-संबंधी खतरों का जोखिम बढ़ गया है। हिमनद झील विस्फोट बाढ़ को हिमनद-संबंधी आपदा के रूप में जाना जा सकता है। वर्तमान में, हिमनदीय झील प्रस्फोट बाढ़ की आवृत्ति बढ़ गई है। हिमनदीय झील विस्फोट बाढ़ को खतरों को आंतरिक और बाहरी दोनों कारकों द्वारा ट्रिगर किया जा सकता है। तापमान और वर्षा में भिन्नताएं, जो बाहरी कारक हैं, हिमनद झीलों में बर्फ के संचयन और हिमगलन को प्रभावित करती हैं। इसके अतिरिक्त, हिम चट्टान गिरना, भूस्खलन, अतिप्रवाह क्षरण, पाइपिंग, और अन्य कारक, हिमनद झील विस्फोट को ट्रिगर करते हैं, जिससे हिमनदीय झील विस्फोट बाढ़, खतरों की मात्रा और आवृत्ति प्रभावित होती है। पहाड़ी क्षेत्रों में बादल फटने और भूस्खलन की घटनाएं आम हो गयी हैं। झीलों को आज आपदा और खतरे की दृष्टि से देखा जा रहा है इन हालातों में यदि हिमस्खलन होने की स्थिति में हिमनद में बनी ये झीलें विशाल रूप लेने के बाद जब विखंडित होती हैं, तो नदी-घाटियों में भारी नुकसान हो सकता है। हिमनदीय झील प्रस्फोट बाढ़ अत्यधिक विनाशकारी हो सकती हैं। हिमनद झील प्रस्फोट बाढ़ न केवल अनुप्रवाह क्षेत्रों, विशेष रूप से प्रमुख इंजीनियरिंग सुविधाओं पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती हैं, बल्कि अनुप्रवाह में नदी के स्तर में तीव्र वृद्धि का कारण भी बन सकती है, जिससे आवासीय क्षेत्रों, कृषि भूमि और नदी के साथ बुनियादी ढांचे को बाढ़ से नुकसान हो सकता है। साथ ही, बाढ़ द्वारा बड़ी मात्रा में ले जाया गया तलछट और बजरी जलविद्युत परियोजना को हानि पंहुचा सकती है।

झीलों के टूटने से उत्पन्न होने वाले खतरे को कम करने के लिये यह आवश्यक है कि अति संवेदनशील झीलों का व्यापक अध्ययन किया जाना चाहिए। साथ ही यह भी आवश्यक है कि झीलों के अनुप्रवाह क्षेत्र में कितना पानी किस समय तथा किस तीव्रता से आयेगा, इसका वैज्ञानिक अध्ययन करना जरूरी है। यह भी पूर्वानुमान लगाना चाहिये कि कितना भाग बाढ़ की चपेट में आयेगा, जिससे कि निचले क्षेत्र में बाढ़ प्रबन्धन के लिये पूर्व चेतावनी प्रणाली बनाई जा सके। हिमनदीय झील विस्फोट बाढ़ के खतरों को देखते हुये विशेष रूप से मानसून ऋतु में संवेदनशील झीलों पर सतर्कता अति आवश्यक है, साथ-साथ बाढ़ प्रबन्धन हेतु पूर्व चेतावनी प्रणाली आदि को स्थापित करने की भी आवश्यकता है।

संपर्क करें:
डॉ. अनिल कुमार लोहनी
राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान,
रुड़की।

पुष्पेन्द्र कुमार अग्रवाल

नर्मदा नदी का जलविज्ञानीय विश्लेषण

भारत में नदियों को जीवनदायिनी मां के रूप में पूजा जाता है। नर्मदा सबसे महत्वपूर्ण पवित्र नदियों में से एक है और इस नदी में जनमानस की अपार आस्था समाई हुई है। पवित्रता में इसका स्थान गंगा के तुरन्त बाद है। कहा जाता है कि गंगा में स्नान करने से जो पुण्य प्राप्त होता है वह नर्मदा के दर्शन मात्र से ही प्राप्त हो जाता है। नर्मदा के किनारे सैकड़ों तीर्थस्थल और मंदिर तो हैं ही, साथ ही अनेक स्थानों पर इसका सौन्दर्य देखते ही बनता है। असंख्य जड़ी-बूटियों और वृक्षों के बीच से बहती हुई नर्मदा को मध्य प्रदेश की जीवन रेखा भी कहा जाता है। सैकड़ों छोटी-मोटी नदियों को अपने में समेटती हुई यह नदी कभी इठलाती हुई चलती है, कभी शांत बहती है तो कभी सहस्त्र धाराओं में विभाजित हो जाती है। मध्य प्रदेश के जबलपुर शहर के पास संगमरमरी दूधिया चट्टानों को चीर कर इसको बहता देख अलौकिक सुख की प्राप्ति होती है।

अमृतमयी पुण्यदायिनी सलिला नर्मदा, भारतीय प्रायद्वीप के अंतर्गत मध्य-भारत के मध्य प्रदेश, गुजरात और महाराष्ट्र राज्यों से होकर प्रवाहित होने वाली पश्चिम प्रवाह की एक प्रमुख नदी है। मध्यभारत की जीवन रेखा नर्मदा नदी की गणना देश की वृहत्तम एवं प्रमुख बारहमासी नदियों में की जाती है। इस नदी का उद्गम 22°40' उत्तरी अक्षांश एवं 8°45' पूर्वी देशांतर पर समुद्र तल से 1057 मीटर की ऊँचाई पर, मध्य प्रदेश के शहडोल जिले में स्थित, मैकाल पर्वतश्रंखला के अमरकंटक पठार से होता है। गुजरात में भरूच के निकट, अरब सागर में खंभात की खाड़ी में समाहित होने से पूर्व यह पवित्र नदी, 1312 किलोमीटर के अपने प्रवाह-पथ में तीन राज्यों मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और गुजरात से होकर गुजरती है। यह नदी अपने पूर्ण प्रवाह-पथ के प्रथम 80% (1079 किमी) प्रवाह मार्ग में, मध्य प्रदेश के शहडोल, मण्डला, जबलपुर, नरसिंहपुर, होशंगाबाद, खण्डवा तथा खरगोन जिलों से होकर प्रवाहित होती है। तत्पश्चात अगले 74 कि.मी. मार्ग के अंतर्गत यह नदी महाराष्ट्र राज्य के निकटवर्ती क्षेत्रों से होकर प्रवाहित होती है जिसमें 35 कि.मी. मार्ग मध्य प्रदेश राज्य में तथा 39 कि.मी. मार्ग गुजरात राज्य में पड़ता है। अंततः खंभात की खाड़ी में समाहित होने से पूर्व इस नदी का लगभग 159 कि.मी. प्रवाह मार्ग गुजरात राज्य में पड़ता है। नर्मदा नदी बेसिन का सूचकांक मानचित्र चित्र-1 में दर्शाया गया है।

नर्मदा भारतवर्ष की पांचवीं सबसे बड़ी नदी है। इसकी कुल लम्बाई 1312 कि.मी. है। प्रायद्वीपीय भारत की अधिकांश नदियों की दिशा के विपरीत यह नदी पूर्व से पश्चिम की ओर प्रवाहित होती है। नर्मदा नदी बेसिन एक संकरा तथा लंबा बेसिन है। नर्मदा नदी बेसिन का कुल आवाह क्षेत्र 98,796 वर्ग कि.मी. है जो उत्तरी अक्षांश 21°20' से

23°45' तथा पूर्वी देशांतर 72°32' से 81°45' के मध्य स्थित है। नर्मदा नदी बेसिन उत्तर में विंध्य पर्वतश्रंखला, पूर्व में मैकाल पर्वतश्रंखला, दक्षिण में सतपुड़ा पर्वतश्रंखला और पश्चिम में अरब सागर से आच्छादित है। नर्मदा बेसिन का अधिकांश भाग समुद्र तल से 500 मीटर से भी कम की ऊँचाई पर स्थित है। भारत सरकार के जल शक्ति मंत्रालय द्वारा किये गए आंकलन के अनुसार नर्मदा बेसिन की कुल सतही जल संभाव्यता 45.64 घन किमी/वर्ष तथा भूजल संभाव्यता 10.83 घन किमी/वर्ष आंकलित की गयी है। सरदार सरोवर बांध तक नर्मदा नदी का कुल आवाह क्षेत्र 88,000 वर्ग किलोमीटर है। नर्मदा बेसिन के जल निकासी क्षेत्र का राज्यवार वितरण सारणी-1 में दर्शाया गया है।

सारणी 1: नर्मदा बेसिन के जल निकासी क्षेत्र का राज्यवार वितरण

राज्य	जल निकासी क्षेत्र (वर्ग किलोमीटर में)
मध्य प्रदेश	85,859
महाराष्ट्र	1,538
गुजरात	11,399
योग	**98,796**

नर्मदा नदी के उद्गम स्थल पर कई जल प्रपात स्थित हैं। अपने उद्गम स्थल से 8 किमी दूर, कपिलधारा झरने पर नदी का जल 21 से 24 मीटर ऊंचाई से गिरता है। 0.4 किमी आगे, धुआँधारा जल प्रपात पर यह लगभग 4.6 मीटर ऊंचाई से गिरता है। नर्मदा नदी के उद्गम से 248 किमी की दूरी पर इसकी पहली प्रमुख सहायक नदी बुरहनेर नर्मदा नदी के बाएँ तट पर समाहित होती है। इसके पश्चात यह नदी एक संकरी और गहरी घाटी में सामान्यतः दक्षिण-पश्चिम दिशा में प्रवाहित होते हुए कई घुमावदार मोड़ लेती है। अपने उद्गम से 286 किमी की दूरी पर यह नदी उत्तर की ओर मुड़ जाती है तथा यहाँ से एक किमी अनुप्रवाह में एक और प्रमुख सहायक नदी बंजर इसके बाएँ तट पर समाहित होती है। इसके अनुप्रवाह में नर्मदा नदी सहस्रधारा नामक अनेक चैनलों में मंडला शहर से होकर प्रवाहित होती है। जबलपुर शहर के निकट उद्गम से 404 किलोमीटर दूरी पर नर्मदा नदी, सुरम्य धुआँधार जलप्रपात पर लगभग 15 मीटर ऊंचाई से नीचे गिरती है। जिसके बाद यह भेड़ाघाट की प्रसिद्ध संगमरमर की चट्टानों के मध्य स्थित एक संकरी नहर से होकर प्रवाहित होती है।

संगमरमर की चट्टानों से निकलकर नर्मदा नदी उपजाऊ मैदानी क्षेत्रों में प्रवेश करती है। नर्मदा नदी के उद्गम से इसके अनुप्रवाह में खंभात की खाड़ी में समाहित होने से पूर्व इसके बाएँ तट से कई सहायक नदियाँ जैसेः शेर, शक्कर, बर्नार, दुधी, तवा, गंजल, छोटा तवा, गोई, गार, करजन आदि तथा इसके दाएं तट से हिरन, तेंदोनी, बरना, चंद्रकेशर, कोलार, चोरल, कानर मान, ऊटी, हथनी, ओरसांग आदि इसमें समाहित होती हैं। खंभात की खाड़ी में नदी के मुहाने से 48 किलोमीटर प्रतिप्रवाह तक नदी में ज्वार का प्रभाव महसूस किया जाता है। नर्मदा नदी पर स्थित भरूच एक महत्वपूर्ण नदी बंदरगाह है। नर्मदा के मुहाने और भरूच शहर के मध्य माल के परिवहन के लिए काफी बड़े आकार के मालवाहक जहाज चलते हैं। भरूच से 32 किलोमीटर प्रतिप्रवाह के रेतीले क्षेत्र में नौवहन संभव है। इस जगह/स्थान/स्थल/क्षेत्र से आगे चट्टानों और तेज बहाव के कारण नौवहन संभव नहीं है। नर्मदा की सहायक नदियाँ भी नौवहन योग्य नहीं हैं।

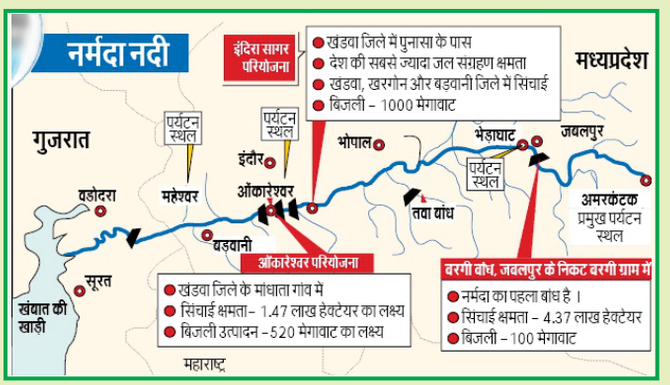

नर्मदा नदी बेसिन का सूचकांक मानचित्र

नर्मदा नदी की प्रमुख सहायक नदियाँ

नर्मदा नदी की कुल 41 सहायक नदियाँ हैं। इनमें से 22 नदियाँ बाएँ तट पर और 19 नदियाँ दाएं तट पर समाहित होती हैं। इनमें से नर्मदा की कुछ महत्वपूर्ण सहायक नदियों का संक्षिप्त विवरण निम्न खण्डों में दर्शाया गया है।

बरना नदी

बरना नदी मध्य प्रदेश के रायसेन जिले में विंध्य पर्वतमाला में बरखेरा गांव के पूर्व में 22°55' उत्तरी अक्षांश और 77° 44' पूर्वी देशांतर पर समुद्र तल से 450 मीटर की ऊंचाई से उद्गमित होती है। यह नदी अपने उद्गम से दक्षिण-पूर्व दिशा में कुल 105 किलोमीटर की दूरी तय करने के बाद डिमरिया गांव के पास नर्मदा नदी के दाएं तट पर उसके उद्गम स्थल से 605 किलोमीटर दूरी पर समाहित हो जाती है। इस नदी का कुल जल निकासी क्षेत्र 1,987 वर्ग किलोमीटर है।

गंजल नदी

गंजल नदी मध्य प्रदेश के बैतूल जिले में सतपुड़ा पर्वतमाला में भीमपुर गांव के उत्तर में 22°00' उत्तरी अक्षांश और 77°30' पूर्वी देशांतर पर समुद्र तल से 800 मीटर की ऊंचाई पर से उद्गमित होती है। गंजल नदी अपने उद्गम से उत्तर-पश्चिमी दिशा में 89 किलोमीटर दूरी तय करने के बाद छिपनेर गांव के पास नर्मदा में समाहित हो जाती है। गंजल नदी की एक मुख्य सहायक नदी मोरंड अपने उद्गम से लगभग 121 किलोमीटर की दूरी तय करने के बाद छिदगांव के प्रतिप्रवाह में गंजल नदी में समाहित होती है।

छोटा तवा नदी

छोटा तवा नदी नर्मदा नदी की बायीं तटवर्ती सहायक नदी है, जो मध्य प्रदेश के पश्चिमी निमाड़ जिले में सतपुड़ा पर्वतमाला में ककोरा गांव के पास उत्तरी अक्षांश 21°31' और पूर्वी देशांतर 75°50' से उद्गमित होती है तथा उत्तर पूर्वी दिशा में कुल 169 किलोमीटर की दूरी तय करने के बाद पुरनी गांव के उत्तर में नर्मदा नदी के स्रोत से 829 किलोमीटर की दूरी पर नर्मदा नदी में समाहित हो जाती है। छोटा तवा का बेसिन पूर्वी देशांतर 85°50' से 77°11' और उत्तरी अक्षांश 21°27' से 22°11' के मध्य स्थित है।

हिरन नदी

हिरन नदी मध्य प्रदेश के जबलपुर जिले में कुंडम गांव के पास भानरेर पर्वत श्रृंखला में समुद्र तल से 600 मीटर की ऊंचाई पर उत्तरी अक्षांश 23°12' और पूर्वी देशांतर 80°27' पर उद्गमित होती है। यह नदी अपने उद्गम से सामान्यतः दक्षिण-पश्चिम दिशा में कुल 188 किलोमीटर के प्रवाह के पश्चात सांकल गांव के निकट नर्मदा नदी के दाएं तट पर समाहित होती है। हिरन नदी को नर्मदा की सबसे बड़ी दाहिनी तटवर्ती सहायक नदी होने का गौरव प्राप्त है और इस नदी का जल निकासी क्षेत्र 4,792 वर्ग किलोमीटर है।

कोलार नदी

कोलार नदी मध्य प्रदेश के सीहोर जिले में विंध्याचल पर्वतमाला में बिलकिसगंज गांव के निकट समुद्र तल से 550 मीटर की ऊंचाई पर 23°07' उत्तरी अक्षांश और 77°17' पूर्वी देशांतर पर उद्गमित होती है। अपने उद्गम स्थल से दक्षिण-पश्चिम दिशा में कुल 101 किलोमीटर जल प्रवाह के पश्चात यह नदी नसरुल्लागंज के दक्षिण में नर्मदा नदी के दाएं तट पर समाहित होती है। कोलार नदी का कुल जल निकासी

क्षेत्र 1,347 वर्ग किलोमीटर है।

ओरसांग नदी

ओरसांग नदी मध्य प्रदेश के झाबुआ जिले के विंध्य पर्वतमाला में, भाबरा गांव के पास समुद्र तल से 300 मीटर की ऊंचाई पर, 22°30' उत्तरी अक्षांश और 74°18' पूर्वी देशांतर पर उद्गमित होती है और अपने उद्गम के पश्चात दक्षिण-पश्चिम दिशा में कुल 101 किलोमीटर के प्रवाह के पश्चात चांदोद के पास नर्मदा नदी के दाएं तट पर समाहित होती है। इस नदी का कुल जल निकासी क्षेत्र 4,079 वर्ग किलोमीटर है तथा नर्मदा के दाएं तट की सहायक नदियों में हिरन के बाद यह सबसे बड़ी नदी है।

शेर नदी

शेर नदी मध्य प्रदेश के सिवनी जिले में पाटन के पास सतपुड़ा पर्वतमाला से समुद्र तल से 600 मीटर की ऊंचाई पर 22°31' उत्तरी अक्षांश और 79°25 पूर्वी देशांतर से उद्गमित होती है। यह नदी अपने उद्गम से उत्तर-पश्चिम दिशा में कुल 129 किलोमीटर की दूरी तय करने के बाद ब्रह्मांड के पास नर्मदा में उसके बाएँ तट पर समाहित होती है। शेर नदी का कुल जलग्रहण क्षेत्र 2,901 वर्ग किलोमीटर है।

तवा नदी

नर्मदा की सबसे बड़ी बायीं तटवर्ती सहायक नदी तवा, मध्य प्रदेश के छिंदवाड़ा जिले में सतपुड़ा पर्वतमाला की महादेव पहाड़ियों में चेरकथरी गांव के पास समुद्र तल से 900 मीटर की ऊंचाई पर 22°13' उत्तरी अक्षांश और 78°23' पूर्वी देशांतर से उद्गमित होती है। तवा नदी अपने उद्गम से उत्तर-पश्चिमी दिशा में 172 किलोमीटर के प्रवाह के बाद होशंगाबाद के उत्तर-पूर्व में नर्मदा नदी के बाएँ तट पर समाहित होती है। देनवा इसकी महत्वपूर्ण सहायक नदी है। तवा का कुल जल निकासी क्षेत्र 6,333 वर्ग किलोमीटर है। इस जलग्रहण क्षेत्र में तवा नामक एक बांध निर्मित किया गया गया है।

नर्मदा बेसिन में जलवायु

नर्मदा बेसिन की जलवायु आर्द्र उष्णकटिबंधीय है जो पूर्व में उप-आर्द्र से लेकर पश्चिम में अर्ध-शुष्क तक है, तथा उच्च पहाड़ी क्षेत्रों के आसपास आर्द्र या अत्यधिक आर्द्र जलवायु के क्षेत्र हैं। बेसिन में कुछ स्थलों पर अधिकांशतः अत्यधिक गर्मी और ठंड का सामना करना पड़ता है। एक वर्ष में, बेसिन में चार अलग-अलग मौसम (i) शरद ऋतु, (ii) ग्रीष्म ऋतु, (iii) दक्षिण-पश्चिम मानसून और (iv) मानसूनेत्तर पाए जाते हैं।

भारत मौसमविज्ञान विभाग (IMD) द्वारा नर्मदा बेसिन और उसके निकटवर्ती स्थलों बिलासपुर, बालाघाट, जबलपुर, शहडोल, मंडला, सिओनी, नरसिंहपुर, छिंदवाडा, होशंगाबाद, सिहोर, रायसेन, बेतुल, देवास, निमाड, खरगोन, इंदौर, धार, झाबुआ, भरूच, सूरत, धुलिया, जलगाँव जिलों के विभिन्न स्थलों पर प्रथम श्रेणी की वेधशालाएँ स्थापित की गयी हैं, जहाँ वर्षा, तापमान, आर्द्रता, वाष्पन आदि के प्रेक्षण भारतीय समय के अनुसार दिन में दो बार 08:30 पूर्वान्ह और 17:30 सायं को लिए जाते है।

बेसिन में सामान्य वार्षिक वर्षा 1,178 मिमी होती है। दक्षिण-पश्चिम मानसून (जून से अक्टूबर) वर्षा की मुख्य ऋतु है, जिसमें वार्षिक वर्षा का लगभग 94% भाग प्राप्त होता है। वार्षिक वर्षा का लगभग 60% भाग जुलाई और अगस्त महीनों के दौरान प्राप्त होता है। बेसिन के ऊपरी पहाड़ी और ऊपरी मैदानी क्षेत्रों में वर्षा भारी होती है। यह धीरे-धीरे निचले मैदानों और निचले पहाड़ी क्षेत्रों की ओर कम हो जाती है और फिर तटीय और बेसिन के दक्षिण-पश्चिमी भाग की ओर बढ़ जाती है। जलग्रहण क्षेत्र के ऊपरी भाग में 1400 मिमी से अधिक वार्षिक वर्षा होती है और कुछ क्षेत्रों में यह मान 1,650 मिमी से अधिक है। नर्मदा नदी के स्रोत से सरदार सरोवर बांध तक, वर्षा भिन्नता गुणांक 19% से 37% तक भिन्न होता है।

नर्मदा बेसिन में माध्य वार्षिक तापमान क्रमशः शरद् ऋतु में 17.5°C से 20°C, ग्रीष्म ऋतु में 30°C से 32.5°C तक दक्षिण-पश्चिम मानसून में 27.5°C से 30°C तक तथा मानसूनेत्तर (postmonsoon) ऋतु में 25°C से 27.5°C तक पाया जाता है। नर्मदा बेसिन में वाष्पीकरण के बारे में बहुत कम आंकड़े उपलब्ध हैं। बेसिन में कुछ कृषि-मौसम संबंधी वेधशालाएँ स्थित हैं। बेसिन में उपलब्ध कोलार उप-बेसिन के लिए संभावित न्यूनतम वाष्पीकरण दिसम्बर माह में 0.093 मिमी एवं अधिकतम वाष्पीकरण जून माह में 0.306 प्रेक्षित किया गया है।

मृदा एवं भूमि उपयोग

बरगी, सरदार सरोवर, बरना और तवा परियोजनाओं के संबंध में किए गए मृदा सर्वेक्षणों से ज्ञात हुआ है कि नर्मदा बेसिन में मुख्य रूप से काली मिट्टी है। बेसिन के विभिन स्थलों पर काली मिट्टी की विभिन्न किस्में जैसेः गहरी काली मिट्टी, मध्यम काली मिट्टी और उथली काली मिट्टी पाई जाती है। इसके अतिरिक्त मिश्रित लाल और काली मिट्टी, लाल और पीली मिट्टी और कंकाल मिट्टी भी कुछ स्थानों पर पाई गयी है। इनमें से गहरी काली मिट्टी बेसिन के अधिकांश भाग में पाई गई है।

वन और कृषि

नर्मदा बेसिन में लगभग 31,670 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र वनों से आच्छादित है जो बेसिन के कुल क्षेत्रफल का 32.1%

जीवनदायिनी नर्मदा नदी पर अनेक जल संसाधन विकास परियोजनाएं विकसित की गयी हैं और अनेक नई परियोजनाएं प्रस्तावित हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व नर्मदा नदी के जल संसाधनों का उपयुक्त प्रबंधन नहीं किया गया था। बेसिन में केवल कुछ मध्यम परियोजनाएं थीं, जिनकी कुल सिंचाई क्षमता लगभग 40,500 हेक्टेयर थी। नर्मदा जल प्रबंधन हेतु मध्य प्रदेश सरकार द्वारा खोसला समिति द्वारा प्रस्तावित मास्टर प्लान प्रस्तुत किया गया था। इसमें प्रस्ताव दिया गया था कि नर्मदा और उसकी सहायक नदियों पर 19 बांध बनाकर 29,295 MCM जल का उपयोग करके 3.1 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र को सिंचाई प्रदान की जा सकती है।

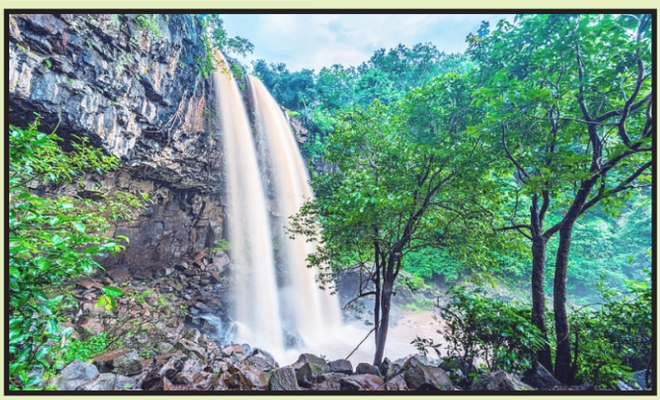

नर्मदा नदी के उद्गम से लगभग 8 किमी. दूर कपिलधारा जलप्रपात।

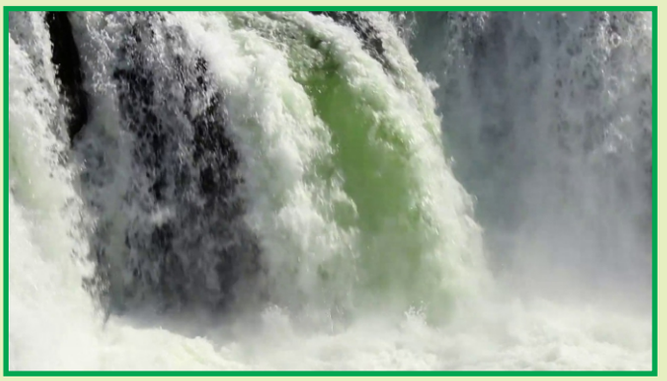

जबलपुर शहर के पास नर्मदा नदी पर धुआँधार जलप्रपात।

है। बेसिन में कृषि योग्य क्षेत्रफल लगभग 59,000 वर्ग किलोमीटर है जो बेसिन के कुल क्षेत्रफल का लगभग 60% है। बेसिन में कृषि योग्य क्षेत्र भारत के कुल कृषि योग्य क्षेत्र का लगभग 3.0.2% है। बेसिन में कुल फसली क्षेत्र देश के कुल फसली क्षेत्र का 2.92% है। बेसिन के कुल कृषि योग्य क्षेत्रफल में से लगभग 4.49 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र पर सालाना खेती की जाती है। कृषि योग्य क्षेत्रफल का लगभग 45% प्रति वर्ष सिंचित होता है। बेसिन में गेहूं सबसे महत्वपूर्ण सिंचित फसल है जो कुल सिंचित क्षेत्रफल का लगभग 28.1% है। जहाँ भी सिंचाई सुविधाएँ उपलब्ध हैं, वहाँ बारहमासी और आठ महीने वाली फसलें उगाई जाती हैं। खेती फसलों के चक्रानुक्रम की प्रणाली द्वारा की जाती है और यहाँ की मुख्य फसलें खरीफ और रबी हैं। बेसिन में गेहूं के अतिरिक्त उगाई जाने वाली फसलों में मुख्यतः चावल, गन्ना, चना, कपास और शेष अन्य फसलों के अंतर्गत ज्वार, बाजरा, मक्का, जौ, दालें, फल, सब्जियाँ, अलसी, रेपसीड, सरसों, तम्बाकू और चारा फसलें हैं। बेसिन में खाद्य और गैर-खाद्य फसलें क्रमशः सिंचित फसल क्षेत्र के लगभग 77.2% और 22.8% भाग को आच्छादित करती हैं।

नर्मदा जल विवाद न्यायाधिकरण (NWDT)

अन्तर्राज्यीय जल विवाद अधिनियम, 1956 के तहत, केंद्र सरकार ने नर्मदा जल के बंटवारे और नर्मदा नदी घाटी विकास पर निर्णय लेने के लिए 6 अक्टूबर 1969 को न्यायमूर्ति श्री वी. रामास्वामी की अध्यक्षता में नर्मदा जल विवाद न्यायाधिकरण (NWDT) का गठन किया। जिसका निर्णय न्यायाधिकरण द्वारा 7 दिसंबर, 1979 को दिया गया। इस निर्णय में चार राज्योंः गुजरात, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और राजस्थान द्वारा नर्मदा नदी के 75% विश्वसनीय जल प्रवाह, 28 MAF (34537.44 MCM) के उपयोग हेतु जल की मात्रा का आबंटन किया गया, जैसा कि सारणी 3 में दर्शाया गया है।

नर्मदा नदी पर जल संसाधन विकास परियोजनाओं का विकास

जीवनदायिनी नर्मदा नदी पर अनेक जल संसाधन विकास परियोजनाएं विकसित की गयी हैं और अनेक नई परियोजनाएं प्रस्तावित हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व नर्मदा नदी के जल संसाधनों का उपयुक्त प्रबंधन नहीं किया गया था। बेसिन में केवल कुछ मध्यम परियोजनाएं थीं, जिनकी कुल सिंचाई क्षमता लगभग 40,500 हेक्टेयर थी। नर्मदा नदी के जल प्रबंधन हेतु मध्य प्रदेश सरकार द्वारा खोसला समिति ने मास्टर प्लान प्रस्तुत किया गया था। इसमें प्रस्ताव दिया गया था कि नर्मदा और उसकी सहायक नदियों पर 19 बांध बनाकर 29,295 MCM जल का उपयोग करके 3.1 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र को सिंचाई प्रदान की जा सकती है। राजस्थान राज्य, जिसके बाड़मेर और जालौर जिलों के रेगिस्तानी इलाके (तत्कालीन प्रस्तावित) उच्च स्तरीय नर्मदा नहर की अंतिम सीमा के निकट हैं, ने समिति से अनुरोध किया कि उनके राज्य में पड़ने वाले 04 मिलियन हेक्टेयर से अधिक क्षेत्र की सिंचाई के लिए नर्मदा जल आवंटित किया जाए। इसके बाद नर्मदा बेसिन के लिए 31 प्रमुख परियोजनाओं की सूची को अंतिम रूप दिया गया।

नवीनतम नियोजित विकास कार्यक्रम के अनुसार, कुल 29 प्रमुख, 135 मध्यम और 3,000 लघु परियोजनाओं का निर्माण 46 लाख हेक्टेयर भूमि की सिंचाई और लगभग 3,590 मेगावाट की स्थापित क्षमता के साथ बिजली उत्पादन के लिए किया जाएगा। 29 प्रमुख परियोजनाओं में से सरदार सरोवर बाँध, इंदिरा सागर बाँध, ओंकारेश्वर बाँध, तथा बरगी बांध मटियारी (धोबा टोरिया), तवा, सुक्ता, कोलार और बरना, मान, जोबट, पुनासा, अपरबेदा, कठोरा परियोजनाएं पूर्ण हो चुकी हैं। इनमें से कुछ परियोजनाओं की नहर प्रणाली का कार्य निर्माणाधीन है। इसके अतिरिक्त लोअर गोई परियोजना, हेलॉन परियोजना, नर्मदा मालवा गंभीर लिंक परियोजना, बलवाडा, अलीराजपुर, छैगांव आदि परियोजनाएं निर्माणाधीन हैं। नर्मदा नदी पर निर्मित कुछ प्रमुख जल संसाधन परियोजनाओं का संक्षिप्त वर्णन निम्न खण्डों में दिया गया है।

सरदार सरोवर परियोजना

नर्मदा की सरदार सरोवर परियोजना सबसे महत्वाकांक्षी, लेकिन विवादास्पद परियोजनाओं में से एक है। सरदार सरोवर परियोजना 4 राज्यों (मध्य प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र और राजस्थान) की एक बहुउद्देशीय अंतर्राज्यीय परियोजना है जिसका क्रियान्वयन गुजरात सरकार द्वारा किया जा रहा है। यह एक महत्वाकांक्षी और तकनीकी रूप से जटिल सिंचाई योजना है जिसका मुख्य उद्देश्य गुजरात राज्य के वृहत्त क्षेत्रों की जल की आवश्यकता को कम करने के लिए नर्मदा नदी के प्रवाह को नहरों के माध्यम से जोड़ना है। सरदार सरोवर बांध एक कंक्रीट गुरुत्वाकर्षण बांध है जो भारतीय राज्य गुजरात के नर्मदा जिले के केवड़िया शहर

सारणी 3: NWDT द्वारा गुजरात, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और राजस्थान राज्यों के मध्य नर्मदा नदी के जल का आवंटन

राज्य	जल का आबंटन (MAF में)	जल का आबंटन (MCM में)
गुजरात	9.00	11,101.32
मध्य प्रदेश	18.25	22,511.01
महाराष्ट्र	0.25	308.37
राजस्थान	0.50	616.74
योग	28.00	34537.44

सरदार सरोवर बांध।

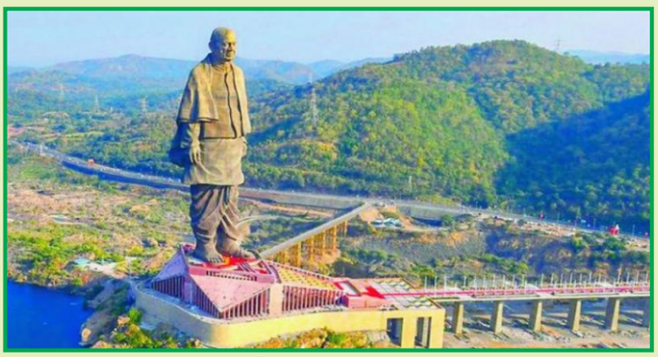

स्टेच्यू ऑफ यूनिटी।

के पास नर्मदा नदी पर निर्मित किया गया है।

भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने 5 अप्रैल 1961 को इस परियोजना की आधारशिला रखी थी। सरदार सरोवर बांध का निर्माण 1987 में प्रारंभ किया जा सका, लेकिन लोगों के विस्थापन की चिंताओं को लेकर नर्मदा बचाओ आंदोलन की पृष्ठभूमि में 1995 में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने परियोजना को रोक दिया था। 2000-01 में सुप्रीम कोर्ट के निर्देशों के अनुसार 111 मीटर की ऊंचाई के साथ इसका निर्माण पुनः प्रारंभ किया गया, जिसे बाद में वर्ष 2006 में बढ़ाकर 123 मीटर और वर्ष 2017 में 138.68 मीटर कर दिया गया था। सरदार सरोवर बाँध की लम्बाई 1210 मीटर है। सरदार सरोवर बांध को 15 सितंबर 2019 को 138.7 मीटर के पूर्ण जल स्तर तक भरा गया। सरदार सरोवर परियोजना के निर्माण से 1.8 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र की सिंचाई होगी, जिसमें से अधिकांश कच्छ और सौराष्ट्र के सूखाग्रस्त क्षेत्रों में होगी।

बांध के मुख्य बिजली संयंत्र में विद्युत उत्पादन के लिए 200 मेगावाट (MW) के छ फ्रांसिस पंप-टर्बाइन स्थापित किये गए हैं। और इसमें पंप-स्टोरेज क्षमता भी शामिल है। इसके अतिरिक्त, मुख्य नहर के सेवन पर एक बिजली संयंत्र में 50MW के पाँच कापलान टर्बाइन जनरेटर स्थापित किये गए हैं। इस प्रकार परियोजना की कुल विद्युत उत्पादन क्षमता 1,450 मेगावाट है। लौह पुरुष वल्लभभाई पटेल को श्रद्धांजलि के प्रतीक स्वरूप विश्व की सबसे ऊंची मूर्ति, स्टेच्यू ऑफ यूनिटी, बांध के सामने स्थापित की गयी है।

इंदिरा सागर परियोजना

इंदिरा सागर या नर्मदा सागर परियोजना, खंडवा जिले में नर्मदा नदी पर सरदार सरोवर परियोजना के प्रतिप्रवाह में निर्मित मध्य प्रदेश की एक बहुउद्देशीय परियोजना है। इसका महत्व इस तथ्य से ज्ञात होता है कि इसके अनुप्रवाह में निर्मित ओंकारेश्वर, महेश्वर और सरदार सरोवर परियोजनाएं, इंदिरा सागर या नर्मदा सागर परियोजना से विनियमित जल प्रवाह प्राप्त करने के बाद ही सिंचाई और विद्युत उत्पादन की अपनी पूर्ण क्षमता प्राप्त कर पाएंगी।

इस परियोजना में 92 मीटर ऊंचा और 653 मीटर लंबा कंक्रीट ग्रेविटी बांध निर्मित किया गया है। यह मध्य प्रदेश के खंडवा और खरगोन जिलों में 2.7 बिलियन यूनिट के वार्षिक उत्पादन के साथ 1,230 वर्ग किलोमीटर भूमि को सिंचाई हेतु जल प्रदान करता है, और 1,000 मेगावाट (8x125 मेगावाट) स्थापित क्षमता का विद्युत उत्पादन करता है। जल के भंडारण के संदर्भ में, यह भारत का सबसे बड़ा जलाशय है, जिसकी क्षमता 12.22 बिलियन घन मीटर या 12.2 किमी^{3} है। इस बांध का निर्माण मध्य प्रदेश सिंचाई विभाग और राष्ट्रीय जलविद्युत ऊर्जा निगम के बीच एक संयुक्त उद्यम के रूप में किया गया। सिंचाई की जाएगी। इस प्रकार इस परियोजना से 2833 लाख हेक्टेयर क्षेत्र की कृषि योग्य भूमि में वार्षिक सिंचाई एवं 520 मेगावॉट (8X65 मेगावॉट) स्थापित क्षमता से विद्युत उत्पादन किया जा रहा है। यह परियोजना मध्य प्रदेश शासन एवं राष्ट्रीय जल विद्युत निगम (NHPC) के संयुक्त उपक्रम नर्मदा जल विद्युत विकास निगम (NHDC) द्वारा पूर्ण की जा रही है। जलाशय की

इंदिरा सागर परियोजना।

नर्मदा भारतवर्ष की पांचवीं सबसे बड़ी नदी है। इसकी कुल लम्बाई 1312 कि.मी. है। प्रायद्वीपीय भारत की अधिकांश नदियों की दिशा के विपरीत यह नदी पूर्व से पश्चिम की ओर प्रवाहित होती है। नर्मदा नदी बेसिन एक संकरा तथा लंबा बेसिन है। नर्मदा नदी बेसिन का कुल आवाह क्षेत्र 98,796 वर्ग किमी. है जो उत्तरी अक्षांश 21°20' से 23°45' तथा पूर्वी देशांतर 72°32' से 81°45' के मध्य स्थित है। नर्मदा नदी बेसिन उत्तर में विंध्य पर्वत श्रंखला, पूर्व में मैकाल पर्वत श्रंखला, दक्षिण में सतपुड़ा पर्वत श्रंखला और पश्चिम में अरब सागर से आच्छादित है। नर्मदा बेसिन का अधिकांश भाग समुद्र तल से 500 मीटर से भी कम की ऊँचाई पर स्थित है। भारत सरकार के जल शक्ति मंत्रालय द्वारा किये गए आंकलन के अनुसार नर्मदा बेसिन की कुल सतही जल संभाव्यता 45.64 घन किमी/वर्ष तथा भूजल संभाव्यता 10.83 घन किमी/वर्ष आंकलित की गयी है।

ओंकारेश्वर बहुउद्देशीय परियोजना

ओंकारेश्वर बहुउद्देशीय परियोजना मुख्य नर्मदा नदी पर इंदिरा सागर परियोजना के अनुप्रवाह में, खंडवा जिले के मांधाता गांव के निकट स्थित है। ओंकारेश्वर परियोजना, इंदिरा सागर परियोजना से 40 किमी अनुप्रवाह पर मध्य प्रदेश में स्थित है। इस परियोजना में 949 मीटर लम्बा एवं 73 मीटर अधिकतम ऊँचाई वाला एक कांक्रीट बांध मध्य प्रदेश के खण्डवा जिले में मांधता ग्राम के निकट नर्मदा नदी पर निर्मित किया गया है। परियोजना से 1468 लाख हेक्टेयर कमाण्ड क्षेत्र में उपयोगी संचयन क्षमता लगभग 300 MCM आंकी गयी है।

रानी अवंती बाई सागर (बरगी) परियोजना

रानी अवंती बाई सागर (बरगी) परियोजना, नर्मदा नदी के मुहाने पर स्थित एक प्रमुख मृदा द्वारा निर्मित चिनाई वाली परियोजना है। इस परियोजना की परिकल्पना एक बहुउद्देशीय योजना के रूप में की गई है जिसका उद्देश्य घरेलू और औद्योगिक उद्देश्यों, सिंचाई और जल विद्युत उत्पादन के लिए जल आपूर्ति करना है। इस परियोजना में जबलपुर शहर से

लगभग 43 किलोमीटर दूर जबलपुर जिले के बरगी गांव के पास नर्मदा नदी पर बरगी बांध निर्मित किया गया है। बांध का अक्षांश और देशांतर क्रमशः 22^{0}56'30'' उत्तर और 79^{0}55'30'' पूर्व है। बांध स्थल तक जलग्रहण क्षेत्र 14,556 वर्ग किलोमीटर है और जलग्रहण क्षेत्र में औसत वार्षिक वर्षा 1,414 मिमी है। यह 69 मीटर ऊंचा और 5,337 मीटर लंबा कम्पोजिट ग्रेविटी बांध है जिसे 1980 के दशक में पूर्ण किया गया था। चिनाई वाले बांध की अधिकतम ऊंचाई 69.80 मीटर है जबकि मिट्टी के बांध की ऊंचाई 29 मीटर है। बांध स्थल पर जलग्रहण क्षेत्र 14,556 वर्ग किलोमीटर है। जलाशय की सकल, उपयोगी और मृत भंडारण क्षमता क्रमशः 3.92 बिलियन घन मीटर, 3.18 बिलियन घन मीटर और 0.740 बिलियन घन मीटर है। जलाशय का अधिकतम जल स्तर, पूर्ण जलाशय स्तर और मृत भंडारण स्तर क्रमशः 425.70 मीटर, 422.76 मीटर और 403.55 मीटर है। जलाशय का अनुमानित जीवन 100 वर्ष है।

तवा बांध

नर्मदा बेसिन में तवा परियोजना का निर्माण वर्ष 1974 में होशंगाबाद जिले के रानीपुर गांव के पास तवा नदी पर किया गया था। तवा नर्मदा नदी की एक बायीं तटवर्ती सहायक नदी है जिसका बांध स्थल तक जलग्रहण क्षेत्र 5,983 वर्ग किमी है। बांध का संचालन सिंचाई और नगरपालिका के उपयोग के लिए घरेलू जल आपूर्ति हेतु किया जाता है। जलग्रहण क्षेत्र के लिए औसत वार्षिक वर्षा 1,564 मिमी है और 75% विश्वसनीय प्रवाह 3,075 एमसीएम है। पूर्ण जल स्तर (355.397 मीटर) पर बाँध की सकल भंडारण क्षमता 2,310 MCM है जबकि उपयोगी भंडारण क्षमता 2,050 MCM है। इस बांध का अधिकतम जल स्तर 356.66 मीटर है।

बरना बाँध

यह बाँध रायसेन जिले में तहसील बरेली के गाँव बारी के निकट स्थित है

ओंकारेश्वर परियोजना।

और 1978 में बनकर तैयार हुआ था। यह बरना नदी पर स्थित है जो नर्मदा नदी की एक दाएं तट की सहायक नदी है। बाँध का कुल जलग्रहण क्षेत्र 1,176 वर्ग किलोमीटर है। बाँध की पूर्ण जलाशय स्तर (348.55 मीटर) पर सकल भंडारण क्षमता 539.00 MCM है और उपयोगी भंडारण क्षमता 453.80 MCM है। बरना बांध 432 मीटर लंबा है और 47.7 मीटर ऊंचा है। मुख्य नहर 38 किलोमीटर लंबी है और इससे 60,290 हेक्टेयर भूमि की सिंचाई की जाती है।

नर्मदा नदी का पौराणिक नामकरण

पुण्यसलिला मेकलसुता मां नर्मदा के पुण्य प्रताप से हर व्यक्ति परिचित है। वैसे तो सामान्यतः अनेक नदियों से कोई न कोई कथा जुड़ी हुई है, लेकिन मां नर्मदा इनमें सबसे भिन्न हैं। नर्मदा नदी सामान्यतः नर्बदा के नाम से प्रचलित है। इस नदी को रीवा नदी भी कहा जाता है। पुराणों में इस नदी के अनेक नाम मिलते हैं जिनमे दक्षिण गंगा, मेकलसूत्र, मेकलकन्यका, पूर्व गंगा, मेकलिद्रजा, सोम्भावा, इन्दिजा आदि प्रमुख हैं।

नर्मदा नदी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक पौराणिक कथाएँ प्रचलित हैं। इनमें से एक कथा के अनुसार नर्मदा, अमरकंटक में रहने वाले एक चरवाहे की सौन्दर्यपूर्ण पुत्री थी। नर्मदा प्रतिदिन अपने पिता को भोजन पहुंचाने खेतों में जाती थी। मार्ग में कुछ समय एक योगी की कुटिया में विश्राम कर लेती थी। कुछ समय बाद कन्या ने बिना कारण बताए आत्महत्या कर ली। जब योगी को पता चला तो उसने भी भांग पीकर आत्महत्या कर ली। मृत्यु के बाद उस योगी के कंठ से एक जलधारा निकली जिसका नाम नर्मदा पड़ा। यह भी कहा जाता है कि नर्मदा नामक वह कन्या गर्भवती हो गयी थी तथा उसने कपिलधारा नामक जलप्रपात में कूदकर जान दे दी थी। कन्या ने जिस नदी में कूदकर जान दी उस नदी का नाम कन्या के नाम पर नर्मदा पड़ा।

एक अन्य पौराणिक कथा के अनुसार एक बार भगवान शिव तपस्या में ध्यानमग्न थे तब उनके शरीर से पसीना बहना शुरू हो गया। भगवान शिव का पसीना एक ताल में एकत्रित हो गया जिसने नदी के रूप में प्रवाहित होना प्रारम्भ कर दिया जिसका नाम नर्मदा पड़ा। मान्यता है कि एक बार क्रोध में आकर नर्मदा नदी ने अपनी दिशा परिवर्तित कर ली और चिरकाल तक अकेले ही बहने का निर्णय लिया। ये अन्य नदियों की तुलना में विपरीत दिशा में बहती हैं। इनके इस अखंड निर्णय की वजह से ही इन्हें चिरकुंआरी कहा जाता है। चिरकुंआरी मां नर्मदा के बारे में कहा जाता है कि चिरकाल तक मां नर्मदा को संसार में रहने का वरदान है। ऐसा उल्लेख मिलता है कि भगवान शिव ने मां रेवा को वरदान दिया था कि प्रलयकाल में भी तुम्हारा अंत नहीं होगा। अपने निर्मल जल से तुम युगों-युगों तक इस समस्त संसार का कल्याण करोगी।

पुराणों में ऐसा बताया गया है कि इनका जन्म एक 12 वर्ष की कन्या के रूप में हुआ था। समुद्र मंथन के बाद भगवान शिव के पसीने की एक बूंद धरती पर गिरी जिससे मां नर्मदा प्रकट हो गईं। इसी वजह से इन्हें शिवसुता भी कहा जाता है।

सारांश

भारत में नदियों को जीवनदायिनी मां के रूप में पूजा जाता है। नर्मदा सबसे महत्वपूर्ण पवित्र नदियों में से एक है और नदी में जनमानस की अपार आस्था समाई हुई है। पवित्रता में इसका स्थान गंगा के तुरन्त बाद है। कहा तो यह जाता है कि गंगा में स्नान करने से जो पुण्य प्राप्त होता है वह नर्मदा के दर्शन मात्र से ही प्राप्त हो जाता है। ऐसा बताया जाता है कि जो भी भक्त पूर्ण निष्ठा के साथ इसकी पूजा व दर्शन करते हैं उन्हें ये जीवनकाल में एक बार दर्शन अवश्य देती हैं। जिस प्रकार गंगा में स्नान का पुण्य है उसी प्रकार नर्मदा के दर्शन मात्र से मनुष्य के कष्टों का अंत हो जाता है। ऐसी पुरातन मान्यता है कि गंगा स्वयं प्रत्येक साल नर्मदा से भेंट एवं स्नान करने आती हैं। मां नर्मदा को मां गंगा से भी अधिक पवित्र माना गया है कहा जाता है कि इसी वजह से गंगा हर साल स्वयं को पवित्र करने नर्मदा के पास पहुंचती हैं। यह दिन गंगा दशहरा का माना जाता है। नर्मदा के किनारे सैकड़ों तीर्थस्थल और मंदिर तो हैं ही साथ ही अनेक स्थानों पर इसका सौन्दर्य देखते ही बनता है। असंख्य जड़ी-बूटियों और वृक्षों के मध्य से प्रवाहित होती हुई नर्मदा को मध्य प्रदेश की जीवन रेखा भी कहा जाता है। सैकड़ों छोटी-मोटी नदियों को अपने में समेटती हुई यह नदी कभी इठलाती हुई चलती है, कभी शांत बहती है तो कभी सहस्त्र धाराओं में विभाजित हो जाती है। मध्य प्रदेश के जबलपुर शहर के पास संगमरमरी दूधिया चट्टानों को चीर कर इसको बहता देख दर्शकों को अलौकिक सुख की प्राप्ति होती है। नर्मदा ने अनादि काल से अनगिनत खेतों को सींचा है। अनेक परियोजनाओं के माध्यम से हमें बिजली की आपूर्ति भी करती है। हमारा यह कर्तव्य है कि इस पवित्र नदी की पवित्रता बनाए रखें तथा इसके जल को दूषित न होने दें

संपर्क करें:
पुष्पेन्द्र कुमार अग्रवाल
राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान,
रुड़की।

वरुण गोयल, डॉ. वी.सी. गोयल,
राजेश अग्रवाल एवं इं. ओमकार सिंह

पश्चिमी राजस्थान के थार रेगिस्तान में जल जीवन मिशन की स्थिरता हेतु जल संचयन की महत्वपूर्ण तकनीकें

सतही जल स्रोतों की अनुपलब्धता के कारण, मारवाड़ क्षेत्र में पशु और जनमानस को पेयजल के संकट का सामना करना पड़ता है। बिखरी हुई बस्तियों के पैटर्न और मरुस्थलीय स्थलाकृति के कारण, सरकारी जल योजनाएं क्षेत्र की अधिकांश आबादी तक नहीं पहुँच पा रही हैं। राष्ट्रीय आवास सर्वेक्षण 2003 के अनुसार, इस क्षेत्र की कुल ग्रामीण बस्तियों के लगभग 51% क्षेत्र के जनमानस को सरकार की जलापूर्ति प्रणाली का पूर्ण तथा 16% को आंशिक लाभ प्राप्त हो रहा है, जबकि क्षेत्र की 33% आबादी पूर्णतः से इष्टतम जल आपूर्ति पर आश्रित है।

मारवाड़ शब्द संस्कृत शब्द मारुवत से बना है, जिसका अर्थ है मृत्यु की भूमि। इस क्षेत्र में राजस्थान राज्य के सात जिलेः जोधपुर, जैसलमेर, जालोर, बाड़मेर, नागौर, पाली और सिरोही सम्मिलित हैं। मारवाड़ क्षेत्र राजस्थान राज्य के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 39.4% है। इस क्षेत्र में अनियमित वितरण के साथ सीमित मौसमी वर्षा, वृहत्त दैनिक और मौसमी परिवर्तन के साथ उच्च वायुमंडलीय तापमान, तीव्र सौर विकिरण, तेज हवाएं, खारा भूजल और विरल वनस्पति जैसी विशेषताएं प्रमुख है। क्षेत्र का 10% हिस्सा रेत के टीलों से निर्मित है, और अन्य 90% में चट्टानें, संकुचित-नमक झील के तल और निश्चित टिब्बा क्षेत्र शामिल हैं। इस क्षेत्र की जलवायु प्रतिकूल है, इस क्षेत्र में वार्षिक तापमान सर्दियों में लगभग ठंडा तथा गर्मियों में 50°C से अधिक तक होता है। इस क्षेत्र में प्रत्येक तीन वर्ष में एक बार औसत से कम वर्षा पाई जाती है और प्रत्येक आठ साल में एक वर्ष अकाल पड़ता है।

राजस्थान सरकार द्वारा वर्ष 2005 में प्रस्तुत, जल संसाधन के एकीकृत विकास पर विशेषज्ञ समिति की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2001 में राज्य में प्रति व्यक्ति जल की उपलब्धता 840 घन मीटर/वर्ष थी, जिसके वर्ष 2050 तक घटकर 439 घन मीटर/वर्ष होने का अनुमान है, जबकि जल की कमी के लिए अंतर्राष्ट्रीय बेंचमार्क 1000 मीटर^3 है। इस क्षेत्र में वर्षा न्यूनतम होती है जिसका वार्षिक औसत लगभग 200 मिमी रहता है। यहाँ का भूजल खारा है और पीने या कृषि के लिए अनुपयुक्त है। यह अनुमान लगाया गया है कि भारत के 74% गाँवों में जल गुणवत्ता की कई समस्याएँ हैं, जिनमें राजस्थान का यह क्षेत्र भी सम्मिलित है, जलवायु परिवर्तन में तीव्र परिवर्तन के कारण, इस क्षेत्र में सूखा व अकाल की आवृत्ति में वृद्धि हुई है। इस क्षेत्र में औसतन एक दशक में छह सूखे के वर्ष देखे जाते हैं। बार-बार आने वाले सूखे और समग्र सूखा-रोधी रणनीति के अभाव के कारण मारवाड़ गंभीर पारिस्थितिक क्षरण से ग्रस्त है।

सतही जल स्रोतों की अनुपलब्धता के कारण, इस क्षेत्र में पशु और जन मानस को पेयजल के संकट का सामना करना पड़ता है। बिखरी हुई बस्तियों के पैटर्न और मरुस्थलीय स्थलाकृति के कारण, सरकारी जल योजनाएं क्षेत्र की अधिकांश आबादी तक नहीं पहुँच पा रही हैं। राष्ट्रीय आवास सर्वेक्षण 2003

के अनुसार, इस क्षेत्र की कुल ग्रामीण बस्तियों के लगभग 51% क्षेत्र के जनमानस को सरकार की जलापूर्ति प्रणाली का पूर्ण तथा 16% को आंशिक लाभ प्राप्त हो रहा है, जबकि क्षेत्र की 33% आबादी पूर्णतः से इष्टतम जल आपूर्ति पर आश्रित है। भागीदारी दृष्टिकोण और स्थान-विशिष्ट रणनीतियों की अनुपलब्धता के कारण, सरकारी योजनाओं के परिणामस्वरूप जन समुदायों ने, इस क्षेत्र में, रेगिस्तानी समुदायों को जीवित रहने में सहायक, सदियों से विकसित की गई पारंपरिक जल-संग्रहण और संरक्षण प्रणालियों की उपेक्षा की है। केंद्रीकृत योजनाओं ने इस पारंपरिक ज्ञान को विकास प्रक्रियाओं के हाशिये पर धकेल दिया है, जिसके परिणामस्वरूप यह क्षेत्र अब जल की भीषण कमी का सामना कर रहा है।

इन चुनौतियों का समाधान सदियों से विकसित निम्नलिखित महत्वपूर्ण तथ्यों, के माध्यम से प्रभावी ढंग से किया जा सकता है। इन महत्वपूर्ण तथ्यों से लोगों को अनुभव के आधार पर वर्तमान जलवायु परिवर्तनशीलता के अनुकूल होने में सहायता मिलेगी और फिर भविष्य की जलवायु परिवर्तनशीलता के लिए तैयार रहने हेतु रणनीति विकसित हो पाएगी, साथ ही समुदायों के बीच गरीबी को दूर करने में भी योगदान प्राप्त हो सकेगा।

महत्वपूर्ण तथ्यः

- मारवाड़ विश्व का सबसे सघन आबादी वाला शुष्क क्षेत्र है जहां प्रति वर्ग किमी 83 व्यक्ति रहते हैं।
- मारवाड़, राजस्थान राज्य के कुल भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 40% भूभाग है, यहाँ की जनसंख्या और पशुधन क्रमशः राज्य की कुल जनसंख्या और पशुधन का 22% और 34% है।
- यद्यपि राजस्थान राज्य, विश्व के सर्वाधिक जल की कमी वाले क्षेत्रों में से एक है तथापि मारवाड़ क्षेत्र में जल उपलब्धता राजस्थान राज्य में भी सबसे न्यूनतम है।
- 2004 में UNFCCC द्वारा इस क्षेत्र को जलवायु परिवर्तन के लिए अत्यंत संवेदनशील क्षेत्र के रूप में वर्गीकृत किया है।
- इस क्षेत्र में वार्षिक औसत वर्षा 200 मिमी है।
- इस क्षेत्र में सामन्यतः एक दशक में औसतन छह सूखे के वर्ष होते हैं। जबकि राज्य में मौसम संबंधी सूखे की संभावना 47% है।
- इस क्षेत्र में सूखे की आवृत्ति एक सामान्य घटना है, तथा इस क्षेत्र में विगत 50 वर्षों में से 43 वर्षों में सूखा पड़ा है।

मारवाड़ क्षेत्र में सूखे से प्रभावित जनमानस।

- इस क्षेत्र के भूजल स्तर में सामान्यतः प्रतिवर्ष 1-2 मीटर की दर से गिरावट दर्ज की जा रही है, जबकि कुछ क्षेत्रों में भूजल स्तर में गिरावट का मान 2-5 मीटर/वर्ष तक है।
- क्षेत्र के भूजल में TDS की सांद्रता 10,000 ppm तक पाई जाती है।

क्षेत्र में जल-जीवन मिशन की स्थिति

यदि विस्तार से समझें तो क्षेत्र की भौगोलिक विषमताएं जैसेः आबादी घनत्व कम होना और क्षेत्रीय स्तर पर जलापूर्ति की आधारभूत संरचनाओं का अभाव, इस महत्वाकांक्षी परियोजना के क्रियान्वयन में मुख्य चुनौतियां हैं। इसके अतिरिक्त, स्थाई जल स्त्रोतों से लाभार्थी तक की दूरी भी एक बड़ी समस्या है जिसे पाइपलाइन के माध्यम से पाटना आर्थिक व सामाजिक रूप से संभव प्रतीत नहीं होता है, इस क्षेत्र में प्रति व्यक्ति/दिन 55 लीटर जल की आपूर्ति करना भी एक कठिन कार्य है, विशेषकर उस स्थिति में जब क्षेत्र में कोई सदानीरा नदी उपलब्ध नहीं है, मरूस्थलीय क्षेत्र के कारण सतही वर्षा-जल संरक्षण के भी सीमित साधन हैं, तथा भूजल में भी TDS की मात्रा नियत सीमा से कई गुना अधिक है।

क्षेत्र में जल जीवन मिशन की परिकल्पना को पूर्ति रूप देने से पूर्व क्षेत्र के इतिहास को जानना आवश्यक है, थार रेगिस्तान के पारंपरिक समुदाय सबसे घनी आबादी वाला मरूस्थलीय क्षेत्र होने का गौरव प्राप्त हुआ है, कैसे नवाचारों ने इन समुदायों को बेहतर जल प्रबंधन करने हेतु प्रेरित किया है और जल संरक्षण की इन तकनीक को परंपरा और धार्मिक रीति रिवाजों के साथ सम्बद्ध कर उसे अमर बना दिया है।

इस क्षेत्र में जल जीवन मिशन की सफलता के लिए स्थानीय ज्ञान पर आधारित समाधान उपलब्ध हैं इन्हें जानने से पूर्व यह भी जान लेना आवश्यक है कि जल संरक्षण की स्थानीय और परंपरागत तकनीकें क्या हैं तथा इन्हें कैसे आधुनिक ज्ञान के साथ जोड़कर हर घर हेतु नल से जल के लिए एक सतत जल-स्त्रोत के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है।

तालाब-तालाबों को ग्राम की जीवनरेखा कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। विश्व की पुरातन संस्कृतियों में से एक सिंधु घाटी की सभ्यता में भी जलाशय के रूप में इसके उदाहरण हैं। प्राचीन ग्रंथों में भी इसका महत्व बताया गया है। मत्स्यपुराण में कहा गया है कि 10 कुंओं के बराबर एक बावड़ी, 10 बावड़ियों के बराबर एक तालाब, 10 तालाबों के बराबर एक पुत्र और 10 पुत्रों के बराबर एक वृक्ष होता है।

राजस्थान में सूखे का एक दृश्य।

अपनी भूमि और पर्यावरण के संरक्षक और प्रबंधक हैं और उन्हें यह उत्तरदायित्व पीढ़ियों के माध्यम से सौंपा गया है। आखिर कैसे परंपरागत जल संरक्षण तकनीक के माध्यम से विश्व की

थार मरुस्थल के अधिकांश ग्रामवासी सदियों से अपनी प्यास इन तालाबों से बुझाते आए हैं। इन तालाबों के आसपास के क्षेत्र को पवित्र पूजास्थल के रूप में विकसित किया जाता है जिसे

थार मरुस्थल के अधिकांश ग्रामवासी सदियों से अपनी प्यास इन तालाबों से बुझाते आए हैं। इन तालाबों के आसपास के क्षेत्र को पवित्र पूजास्थल के रूप में विकसित किया जाता है जिसे स्थानीय भाषा में ओरण कहते हैं। इसके सामाजिक कारण भी हैं जैसे यह पूजा के स्थल तालाबों के पास विकसित किए जाते हैं तो समस्त हितधारक न सिर्फ क्षेत्र को स्वच्छ बनाए रखते हैं अपितु समय-समय पर इसकी सफाई में भी अपना अहम योगदान श्रमदान के रूप में देते हैं, जो कि किसी भी तालाब को जीवित रखने हेतु आवश्यक है।

स्थानीय भाषा में ओरण कहते हैं। इसके सामाजिक कारण भी हैं जैसे यह पूजा के स्थल तालाबों के पास विकसित किए जाते हैं तो समस्त हितधारक न सिर्फ क्षेत्र को स्वच्छ बनाए रखते हैं अपितु समय-समय पर इसकी सफाई में भी अपना अहम योगदान श्रमदान के रूप में देते हैं, जो कि किसी भी तालाब को जीवित रखने हेतु आवश्यक है।

वर्षा जल या किसी झरने के जल के संचयन के लिए बनाए जाने वाले तालाबों का प्रचलन अत्यधिक प्राचीन है। गर्तभूमि पर जल का संचयन हो जाने से कुछ तालाब अपने आप निर्मित हो जाते रहे हैं। रामायण काल के तालाबों में शृंगवेरपुर का तालाब प्रसिद्ध रहा है। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के निदेशक डॉ. बी.बी. लाल ने पुराने साक्ष्य के आधार पर इलाहाबाद से 60 किलोमीटर दूर खुदाई कर इस तालाब का अन्वेषण किया है। यह तालाब ईसा पूर्व सातवीं सदी में निर्मित किया गया था। महाभारतकालीन तालाबों में कुरूक्षेत्र का ब्रह्मसर, करनाल की कर्णझील, और मेरठ के पास हस्तिनापुर का शुक्रताल आज भी अस्तित्व में हैं।

नाडी-यह चरागाहों के मध्य स्थित ऐसा जल स्त्रोत होता है जो मुख्यत जीव-जंतुओं की प्यास बुझाने के काम आता है। यह जल स्त्रोत तालाब की तुलना में छोटा होता है और प्रायः आबादी क्षेत्र से दूर स्थित होता है। तालाब व नाडी का पृथक होना इस बात को इंगित करता है कि पुरातन काल से ही मनुष्यों एवं जीव-जन्तु के उपयोग हेतु जल स्त्रोत पृथक हुआ करते थे।

बेरी-ग्रीष्मकाल में जब तालाब या नाडी का सतही जल सूख जाता है, तब तालाब या बेरी में खुदाई करके एक बेरी का निर्माण किया जाता है, इसे पुनः पूरण कूप की संज्ञा भी दी गई है। इस कम गहराई के कुएं में धरती का जल प्राकृतिक रूप से रिसकर आता है जो तालाब पर एकत्रित जल की तुलना में अधिक सुरक्षित होता है।

टांका-अन्य सामुदायिक जलस्त्रोतों की अपेक्षा टांका एक व्यक्तिगत जल-स्त्रोत हो सकता है। क्षेत्र में पारंपरिक रूप से इसके निर्माण हेतु कृत्रिम वर्षा संग्रहण क्षेत्र बनाकर उसके बीच में एक गड्डा बनाया जाता था जिसे उस समय राख के माध्यम से पक्का किया जाता था एवं उसे स्थानीय प्रजाती की घास से ढ़क दिया जाता था।

राजस्थान क्षेत्र में गहरे कुएं से पानी खींचते जनमानस।

वर्तमान समय में क्षेत्र में इसी प्रकार से टांका निर्माण कर क्षेत्र के अधिकांश लोग अपनी जल संबंधित आवश्यकताओं को पूर्ण करते हैं। समय के साथ-साथ टांका निर्माण को वैज्ञानिक रूप से अभिकल्पित किया जाने लगा है जिससे कम स्थान में अधिक व उच्च गुणता मानकों के अनुरूप वर्षा जल का संग्रहण किया जा सके।

आधुनिक भूजल पुनर्भरण तकनीकें

वैसे तो पश्चिमी राजस्थान में अधिकांश जगह भूजल खारा है किंतु कुछ जगह जलभृत, मीठे जल के स्त्रोत भी हैं उन स्थानों को चिन्हित कर वहां विभिन्न तरीकों से वर्षा जल का पुनर्भरण कर स्त्रोत को स्थाई सामुदायिक पेय-जल स्त्रोत के रूप में विकसित किया जा सकता है।

अन्तःस्यंदन कूप- यह तकनीक ऐसे हैण्डपम्प, बोरवेल पर कार्य कर सकती है जिनमें जल या तो बहुत कम हो या समाप्त हो गया हो इस तकनीक में बोर के चारों और जेसीबी की सहायता से स्थलाकृति के अनुसार गहरा गड्ढ़ा बनाया जाता हैं फिर उस गड्ढ़े को सबसे पहले बड़े-आकार के पत्थरों, फिर मझोले आकार के पत्थरों, और अंत में कंक्रीट डालकर परत दर परत बंद किया जाता है उसके पश्चात उस क्षेत्र में व्यर्थ बहने वाले वर्षा जल को उपयुक्त प्रवणता द्वारा इस अन्तःस्यंदन कूप की ओर स्थानांतरित कर दिया जाता है जिससे वर्षा के समय व्यर्थ होने वाला जल उक्त हैण्डपम्प/बोरवेल के भूजल को पुनः पूरित कर सके इस तकनीक में संग्रहित जल को वाष्पोत्सर्जन द्वारा होने वाली हानि से भी बचाया जा सकता है।

जलदायक संचयन एवं पुनःप्राप्ति प्रबंधनः

इस प्रकार की तकनीक में भी जल का भूजल में कृत्रिम पुनः पूरण किया जाता हैं किंतु इसका संचयन खारे भूजल में भी किया जा सकता है और समय-समय पर इसका प्रयोग एक सतत जल-स्त्रोत के रूप में किया जा सकता है। इस प्रकार का पुनः पूरित मीठा, जल खारे जल के जलभृत में एक बहुत वृहत्त गुब्बारे के रूप में होता हैं क्योंकि खारे जल व मीठे जल के घनत्व में अंतर होता है अर्थात मीठा जल, खारे जल की सतह पर तैरता है और इस तकनीक में गुरुत्वाकर्षण बल के कारण मीठा जल, खारे जल के जलभृत के मध्य दबाव के साथ छोड़ा जाता है जिससे कि वह एक गुब्बारे का रूप धारण कर लेता है।

राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान ने इस क्षेत्र में कई शोध कार्य भी किए हैं जिसके सकारात्मक परिणाम प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार का एक शोध कार्य हरियाणा के मेवात क्षेत्र में राष्ट्रीय जलविज्ञान परियोजना के तहत PDS कार्यक्रम के अन्तर्गत किया जा रहा है।

एनिकट-एनिकट का निर्माण वर्षा-जल को नदी तल पर संचित करने के लिए किया जाता है जिससे कि क्षेत्र की जलग्रहण क्षमता बढ़े और उसे कृषि हेतु प्रयोग में लिया जा सके। किंतु क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थितियां ऐसी हैं जहां वाष्पीकरण अधिक मात्रा में होता है अतः वहां इस प्रकार की तकनीक इतनी कारगर सिद्ध नहीं होती है। यही कारण है कि वर्षाजल का संग्रहण जलभृतों में करना, जल हानि को कम करने से ज्यादा

सुरक्षित एवं प्रभावी तरीका है।

उपसतही बंड

इस प्रकार की संरचनाओं का प्रयोग ऐसे स्थानों पर किया जाता है जहां वर्षाऋतु में जल कुछ समय के लिए प्रवाहित होता है इस क्षेत्र को मौसमी नदी प्रवाह कहते हैं। थार मरुस्थल क्षेत्र के कुछ भाग में पहाड़ भी हैं वर्षा होने पर इनकी ढलानों से जो जल प्रवाहित होता है वह आसपास के जलभृतों को पुनः पूरित करता है जिसके कारण इन क्षेत्रों में

यह तकनीक ऐसे हैण्डपम्प, बोरवेल पर कार्य कर सकती है जिनमें जल या तो बहुत कम हो या समाप्त हो गया हो इस तकनीक में बोर के चारों और जेसीबी की सहायता से स्थलाकृति के अनुसार गहरा गड्ढ़ा बनाया जाता हैं फिर उस गड्ढ़े को सबसे पहले बड़े-आकार के पत्थरों, फिर मझोले आकार के पत्थरों, और अंत में कंक्रीट डालकर परत दर परत बंद किया जाता है उसके पश्चात उस क्षेत्र में व्यर्थ बहने वाले वर्षा जल को उपयुक्त प्रवणता द्वारा इस अन्तःस्यंदन कूप की ओर स्थानांतरित कर दिया जाता है जिससे वर्षा के समय व्यर्थ होने वाला जल उक्त हैण्डपम्प/बोरवेल के भूजल को पुनः पूरित कर सके इस तकनीक में संग्रहित जल को वाष्पोत्सर्जन द्वारा होने वाली हानि से भी बचाया जा सकता है।

जल जीवन मिशन द्वारा राजस्थान में जल समाधान हेतु प्रयास।

मीठे जल की उपलब्धता रहती है और इन क्षेत्रों के आसपास कृषि कार्य एवं पेय-जल की आपूर्ति के लिए बहुत से बोरवेल पाए जाते हैं। किंतु ग्रीष्मऋतु काल में अधिकांश बोरवेल में या तो जल स्तर अत्यधिक नीचे चला जाता है या फिर जल की गुणवत्ता में कमी आ जाती है। ऐसे क्षेत्रों में बंड्स की सहायता से जलप्रवाह के वेग को कम किया जाता है जिससे कि जल का रिसाव अधिक हो और जलभृतों में जल का अधिक संग्रहण किया जा सके। यह बंड्स पॉलिथीन की सहायता से मिट्टी भरकर नदी तल के नीचे स्थापित किए जाते हैं। जैसा कि हम सभी जानते हैं कि जल जितना पृथ्वी की सतह के ऊपर प्रवाहित होता है उससे कई गुना अधिक पृथ्वी के नीचे भूजल के रूप में भी प्रवाहित होता है। इन बंड्स का कार्य पृथ्वी की सतह के ऊपर प्रवाहित होने वाले इसी जल को भूजल में पुनः पूरित करना होता है।

रेतीले बाँध-यह उप सतही बंड्स का ही परिशोधित रूप है इसमें बंड का निर्माण कंक्रीट और पत्थर की सहायता से किया जाता है जिससे कि वर्षाकाल में बहते हुए जल को मृदा के नीचे एक जल मृदा हौदी के रूप में एकत्रित किया जा सके। ऐसे में जब भी जल इस संरचना के स्पिलवे से होकर गुजरेगा तो अपने साथ बहकर आने वाली गाद को अपने पीछे एकत्र करेगा। यह मृदा हर वर्षा-ऋतु में एक स्पंज का कार्य करेगी और हर वर्षाकाल में जब जल इस पर से बहेगा, यह स्पंज जल का अवशोषण कर जलभृत का पुनःपूरण कर सकेगा। वास्तव में यह तकनीक अफ्रीका महाद्वीप के केन्या देश में अपनाई गई थी जिसका प्रयोग पश्चिमी राजस्थान के कुछ क्षेत्रों में किया गया है।

यद्यपि इस प्रकार की परियोजनाएं बहुतायत से राज्य सरकार और केंद्र सरकार के वित्तीय योगदान से विभिन्न योजनाओं के अंतर्गत चलाई जा रही हैं। क्योंकि जल की आवश्यकता को लिंग जाति के आधार पर नहीं विभाजित किया जा सकता है इसीलिए जल-शक्ति मंत्रालय द्वारा प्रारम्भ की गई योजनाएं भारत के प्रत्येक नागरिक के लिए आवश्यक हैं। मरुस्थली क्षेत्रों में इस प्रकार की परियोजनाओं के दोहरे एवं चुनौतीपूर्ण कार्य करने होंगे जैसे कि जल आपूर्ति हेतु सतत जल-स्त्रोत सुनिश्चित करना, भौगोलिक रूप से एक कम घनत्व वाले क्षेत्र में प्रत्येक घर तक नल से जल पहुंचाने का प्रबंधन एक चुनौतीपूर्ण कार्य है।

संपर्क करें:
वरुण गोयल, डॉ. वी.सी. गोयल, राजेश अग्रवाल, एवं इ. ओमकार सिंह
राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, रुड़की।

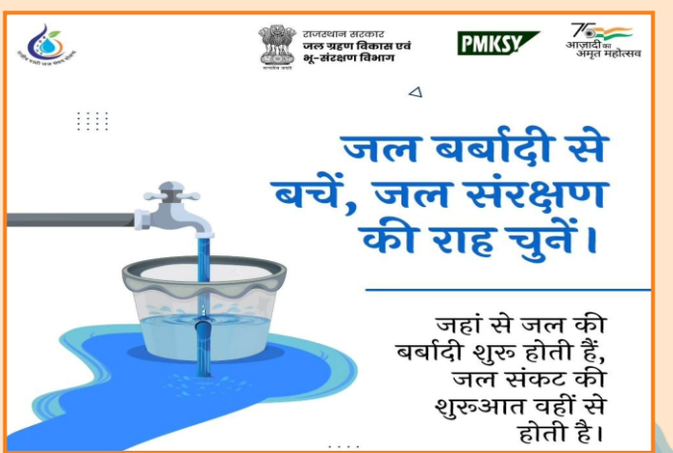

डॉ. अश्विनी रानडे

वैश्विक जलवायु परिवर्तन का मानसून वर्षा पर प्रभाव

भारतवर्ष की जल-मौसमविज्ञानीय योजना एवं प्रबंधन उष्णकटिबंधीय मानसूनी जलवायु से अत्यधिक प्रभावित है जिसके परिणामस्वरूप, ग्रीमकालीन मानसून, इसके निष्पादन में मुख्य भूमिका प्रदान करता है। औपनिवेशिक युग के दौरान, भारतीय अर्थव्यवस्था को भारतीय बजट के लिए ''मानसून वर्षा एक जुआ'' के रूप में वर्णित किया गया था। कई दशकों के विकास के बाद भी, मानसून अपने महत्वपूर्ण प्रभावों के कारण कृषि, खाद्य सुरक्षा और देश की अर्थव्यवस्था का केंद्र है। यद्यपि दक्षिण-पश्चिम मानसून (जून-सितंबर) द्वारा देश के अधिकांश भागों में वार्षिक वर्षा की लगभग 70-90% तक वर्षा होती है, तथापि सीमित सिंचाई सुविधाओं के कारण, लगभग 64% भारतीय किसान अपनी आजीविका के लिए वर्षा आधारित कृषि पर निर्भर हैं। एक श्रेष्ठ मानसून भारत के 81 प्रमुख जलाशयों को पुनःपूरित करने में महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान करता है, जो कृषि सिंचाई, विद्युत उत्पादन और पेयजल आपूर्ति में सहायक सिद्ध होता है।

विगत कुछ दशकों में, वैश्विक वायुमंडल की विषम तापमान वृद्धि ने जलवायु तंत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन किये हैं, जिनका सीधा प्रभाव वर्षा के वितरण और जल संसाधनों पर पड़ा है। वैश्विक तापमान में माध्य वृद्धि और अनियमित मानसूनी गतिविधियां, जैसे कि अत्यधिक वर्षा, सूखा, और असमान वर्षा वितरण, जल संकट को बढ़ावा देने वाले प्रमुख कारक हैं। विश्व मौसमविज्ञान संगठन (WMO) प्रत्येक वर्ष विश्व के महत्वपूर्ण मौसम और जल संबंधी चुनौतियों पर ध्यान केंद्रित करने हेतु एक विशिष्ट विषय का चयन करता है जैसे इस वर्ष के लिए विश्व मौसमविज्ञान संगठन द्वारा चयनित विषय 'At the front line of climate action' है, जिसका उद्देश्य जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने के प्रयासों को प्रोत्साहित करना है। इस विषय पर तत्काल कार्रवाई किया जाना आवश्यक है जिससे जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम किया जा सके। इस विषय में जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों को समझने के लिए, उनकी कमजोरियों का आंकलन करने और उचित नीतियों के विकास के माध्यम से उन्हें कम करने की आवश्यकता शामिल है। हमें इस दिशा में अविरत विकास लक्ष्यों के अंतर्गत, निर्णायक कदम उठाने का संकल्प लेना होगा।

''जलवायु परिवर्तन पर अन्तः शासकीय पैनल'' (IPCC) ने यह उल्लेख किया है कि भारतीय उपमहाद्वीप को तीव्र जलवायु परिवर्तनशीलता, बढ़ते तापमान और वर्षा में उल्लेखनीय कमी के कारण कड़ी चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है, जिससे वैश्विक स्तर पर कुछ क्षेत्रों में जल संकट पैदा हो सकता है। वैश्विक जलवायु निर्देशों से प्राप्त जानकारी दर्शाती है कि जैसे-जैसे जलवायु ऊष्ण होगी, जल चक्र में तेजी आयेगी, जिसके परिणामस्वरूप बाढ़ और सूखे की चरम घटनाओं की पद्धति में परिवर्तन दृष्टिगोचर होंगे। IPCC की विशेष रिपोर्ट, वैश्विक उष्णता में 1.5°C वृद्धि में से, वैश्विक तापमान में 1°C वृद्धि के लिए मानव गतिविधियों को उत्तरदाई मानती है। रिपोर्ट यह भी दर्शाती है कि अगले दशक में ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में महत्वपूर्ण कटौती किये जाने से 0.5°C की अतिरिक्त तापमान वृद्धि को रोका जा सकता है। वैश्विक तापमान वृद्धि को अब एक वास्तविकता मानकर व्यापक रूप से स्वीकार किया जा रहा है, और जल संसाधनों और जलविज्ञान चरम घटनाओं पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव का आंकलन करने के लिए अनेक अध्ययन किए गए हैं।

हाल के दशकों में वैश्विक

क्षोभमंडलीय-तापमान संरचनाएं दर्शाती हैं कि वैश्विक तापमान वृद्धि पूरे ग्रह पर समान नहीं है। क्षोभमंडल वायुमंडल की सबसे निचली परत है, जहाँ अधिकांश मौसमीय घटनाएं होती हैं। इन तापमान परिवर्तनों को वर्षा पद्धति में परिवर्तन के साथ सम्बद्ध किया गया है। शुष्क मानसून वर्ष में भी, तीव्र वर्षा की घटनाएं, भारी बाढ़ और आपदाओं का कारण बन सकती हैं। ऐसी घटनाएं, अधिकांशतः तिब्बत और तुर्की क्षेत्रों के मध्य ऊपरी क्षोभमंडल में असामान्य तापमान वृद्धि और ऊपरी पश्चिमी वायुप्रवाहों में एक सुदृढ़ रिज के विकास द्वारा संचालित होने वाली मानसून परिसंचरण की आकस्मिक तीव्रता से संबंधित होती हैं। इस सम्बन्ध में राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान द्वारा किए गए चरम वर्षा घटनाओं के अध्ययनों से ज्ञात होता है कि आकस्मिक वायुमंडलीय उष्णता में वृद्धि और ठंड, मानसून परिसंचरण को महत्वपूर्ण सीमा तक प्रभावित करते हैं, जिससे संबंधित मौसम प्रणालियाँ सशक्त हो जाती हैं परिणामतः प्रभावित क्षेत्रों में भारी वर्षा होती है। वैश्विक स्तर पर तापमान और परिसंचरण में निरंतर असामान्यताएं, तीव्र वर्षा घटकों के साथ सुदृढ़ता से सम्बद्ध होती हैं, जिसके कारण अल्पकालिक भारी वर्षा से लेकर वृहत्त पैमाने पर दीर्घकालिक तीव्र वर्षा तक हो सकती है। वैश्विक स्तर पर तापमान वृद्धि और ठंड के विशिष्ट स्थल विभिन्न मौसम प्रणालियों की उत्पत्ति और विकास को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

देश के विभिन्न भागों में, वर्षा उत्पन्न करने वाली विभिन्न मौसम प्रणालियों उदाहरणतः पश्चिमी विक्षोभ, मानसूनी/चक्रवाती तूफान आदि में महत्वपूर्ण पारस्परिक भिन्नता के कारण भारत में वार्षिक, मौसमी और मासिक वर्षा में अत्यधिक स्थानिक भिन्नता दिखाई देती है। भारत के वृहत्त भागों में मानसूनी वर्षा में सामान्य गिरावट को अनेक अध्ययनों में प्रलेखित किया गया है। 1960 के दशक के पश्चात मानसूनी वर्षा क्षेत्र के पश्चिम की ओर स्थानांतरित होने के कारण मध्य भारतीय बेसिनों में गिरावट की प्रवृत्ति पाई गई है। वर्षा की अंतःवार्षिक परिवर्तनशीलता की प्रवृत्ति, माध्य समय श्रेणी के लिए प्रयुक्त स्थानिक एवं कालिक स्तर पर विशिष्ट रूप से प्रभावित होती है। महासागर-वायुमंडल तंत्र, समुद्र सतही तापमान में परिवर्तन, हिमाच्छादन गतिशीलता, और अप्रत्याशित अंतःमौसमी परिवर्तन आदि घटक, पारस्परिक सहसंबंध स्थापित करके, भारत में वर्षा के वितरण और उसकी पद्धति को प्रतिरूप प्रदान करते हैं।

सुविधाओं के कारण, लगभग 64% भारतीय किसान अपनी आजीविका के लिए वर्षा आधारित कृषि पर निर्भर हैं। एक श्रेष्ठ मानसून भारत के 81 प्रमुख जलाशयों को पुनःपूरित करने में महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान करता है, जो कृषि सिंचाई, विद्युत उत्पादन और पेयजल आपूर्ति में सहायक सिद्ध होता है। विभिन्न क्षेत्रों में मानसून का आगमन, वापसी और मानसून अवधि जैसे घटक महत्वपूर्ण होते हैं, क्योंकि मानसून में विलम्ब, कृषि उत्पादकता और क्षेत्रीय अर्थव्यवस्थाओं को गंभीर रूप से प्रभावित कर सकता है। प्रत्येक वर्ष, उत्तरी गोलार्ध में ग्रीष्म ऋतु के दौरान, मानसून की पहली वर्षा सामान्यतः मई माह में अंडमान सागर पर होती है। वहाँ से, मानसून बंगाल की खाड़ी के उत्तर और उत्तर-पश्चिम दिशा में आगे बढ़ता है, अंत में भारतीय उपमहाद्वीप के दक्षिण और दक्षिण-पूर्वी भागों तक पहुँचता है।

प्रत्येक वर्ष, चरम मानसूनी वर्षा के कारण भारत में गंभीर बाढ़ और आपदाओं का सामना करना पड़ता है, इसके अतिरिक्त देश के अधिकाँश भागों में वृहत्त पैमाने पर सूखे की स्थिति भी पाई जाती है। प्राप्त होने वाले वर्ष में स्थानिक एवं कालिक स्तर पर प्रत्येक वर्ष व्यापक भिन्नता पाई जाती है। राष्ट्रीय बाढ़ आयोग के अनुसार, भारत में 40 मिलियन हेक्टेयर से अधिक बाढ़ संभावित भूमि क्षेत्र है, जिसमें प्रत्येक वर्ष लगभग 7.5 मिलियन हेक्टेयर भूमि बाढ़ से प्रभावित होती है और लगभग 1,600 लोगों के जान माल की हानि होती है। जलवायु परिवर्तन पर IPCC की रिपोर्ट के अनुसार, एक गर्म होती जलवायु द्वारा, चरम घटनाओं की तीव्रता में वृद्धि होने की संभावना है, क्योंकि सतही गर्मी और ऊपरी वायुमंडल में दीर्घ-तरंगीय शीतलन के कारण जल चक्र तीव्र होता है। इन चरम घटनाओं से सम्बद्ध मानसूनी परिसंचरण की स्थिति, दिशा, आकार और तीव्रता में उल्लेखनीय भिन्नता हो सकती है।

भारतवर्ष की जल-मौसमविज्ञानीय योजना एवं प्रबंधन उष्णकटिबंधीय मानसूनी जलवायु से अत्यधिक प्रभावित हैं जिसके परिणामस्वरूप, ग्रीष्मकालीन मानसून, इसके निष्पादन में मुख्य भूमिका निभाता है। औपनिवेशिक युग के दौरान, भारतीय अर्थव्यवस्था को भारतीय बजट के लिए "मानसून वर्षा एक जुआ" के रूप में वर्णित किया गया था। कई दशकों के विकास के बाद भी, मानसून अपने महत्वपूर्ण प्रभावों के कारण कृषि, खाद्य सुरक्षा और देश की अर्थव्यवस्था का केंद्र है। यद्यपि दक्षिण-पश्चिम मानसून (जून-सितंबर) द्वारा देश के अधिकांश भागों में वार्षिक वर्षा की लगभग 70-90% तक वर्षा होती है, तथापि सीमित सिंचाई

वैश्विक तापमान में विषमता का अवलोकन

पिछले हिमयुग (~11,000 वर्ष पूर्व) के अंत के बाद से उत्तरी गोलार्ध में सतही वायु तापमान 11°C से बढ़कर लगभग 15°C हो गया है। 15°C तापमान की यह सीमा, भारतीय ग्रीष्मकालीन मानसून के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। 15°C से कम तापमान होने पर, सिंधु-गंगा के मैदानी क्षेत्रों में सूखे जैसी परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं, जबकि 15°C से 15.5°C के तापमान के मध्य मानसून अवधि में, वर्तमान समय की स्थितियों के समान, अधिक वर्षा होती है। यद्यपि, 15.5°C से अधिक तापमान होने पर मानसूनी वर्षा पश्चिमी की ओर स्थानान्तरित हो जाती है, जिससे गंगा के मैदानी क्षेत्रों में अपेक्षाकृत सूखे की परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। ये पद्धतियां वार्षिक या दशकीय समय सीमा के स्थान पर, शताब्दी और सहस्राब्दी समय-सीमा पर दृष्टिगोचर होती हैं। विगत 10,000 से 4,000 वर्षों के दौरान, उष्ण और ठंडे युग दीर्घावधि तक रहे थे, जबकि वर्तमान के समय में इन चरणों की लघु अवधि के लिए तीव्रता अधिक पाई गयी। लघु हिमयुग के बाद से निरंतर तापमान में वृद्धि पाई जा रही है, जिसमें भारतीय ग्रीष्मकालीन मानसून में उत्तरी गोलार्ध के तापमान के साथ सुसंगत रूप से उतार-चढ़ाव दृष्टिगोचर हो रहा है।

हमने अध्ययन के दौरान सतह से 10 किमी ऊँचाई तक वैश्विक, गोलार्धीय, और क्षेत्रीय स्तरों पर वायुमंडलीय तापमान प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया। भूगोल, खगोल, मौसम विज्ञान, और जलवायु विशेषताओं के आधार पर, विश्व को नौ जलवायु क्षेत्रों:

उत्तर ध्रुवीय (70°-90°N), उत्तर मध्य अक्षांश (45°-70°N), उत्तर उपोष्णकटिबंधीय (25°-45°N), उत्तर उष्णकटिबंधीय (2.5°–25°N), भूमध्य रेखा (2.5°S–2.5°N), दक्षिण उष्णकटिबंधीय (2.5°-25°S), दक्षिण उपोष्णकटिबंधीय (25°-45°S), दक्षिण मध्य अक्षांश (45°-70°S), दक्षिण ध्रुवीय (70°-90°S) में विभाजित किया गया। 1979 से 2018 तक के तापमान आंकड़ों को मासिक भिन्नताओं की तुलना सुनिश्चित करने के लिए समरूप बनाया गया। आंकड़ों के अनुसार, इस अवधि में क्षोभमंडल तापमान में वैश्विक स्तर पर प्रति दशक 0.27°C की वृद्धि पाई गयी। उत्तरी गोलार्ध की क्षोभमंडल-तापमान वृद्धि (0.32°C/दशक), दक्षिणी गोलार्ध की क्षोभमंडल-तापमान वृद्धि (0.22°C/दशक) की तुलना में अधिक थी। सभी जलवायु क्षेत्रों में, दक्षिण ध्रुवीय और दक्षिण मध्य अक्षांश को छोड़कर, तापमान में महत्वपूर्ण वृद्धि देखी गई। तापमान में सबसे अधिक वृद्धि उत्तर ध्रुवीय (0.40°C/दशक) क्षेत्र में देखी गई, जबकि दक्षिण ध्रुवीय क्षेत्र में सबसे कम वृद्धि (0.06°C/दशक) पाई गई। 1979-2008 के आंकड़ों की तुलना में, विगत दशक में, विश्व के वार्षिक माध्य क्षोभमंडल-तापमान में +0.57°C की वृद्धि दर्ज की गयी। उत्तरी गोलार्ध ने अत्यधिक वृद्धि (+0.66°C) दर्ज की, जबकि दक्षिणी गोलार्ध में यह वृद्धि (+0.48°C) दर्ज की गयी थी। नौ जलवायु क्षेत्रों के क्षोभमंडल-तापमान में सर्वाधिक महत्वपूर्ण वृद्धि उत्तर ध्रुवीय (0.78°C) क्षेत्र में पाई गई, जबकि सबसे कम वृद्धि दक्षिण ध्रुवीय (+0-08°C) क्षेत्र में रही।

सामान्य तौर पर, पूरे क्षोभमंडल में, दक्षिण ध्रुवीय से उत्तर ध्रुवीय क्षेत्रों तक जलवायु उष्णता प्रवृत्तियों की दर में वृद्धि देखी गई। इस विषम परिवर्तन ने अधिकांश जलवायु क्षेत्रों मे अंतर्गोलार्धीय तापमान अंतर को कम कर दिया है। इस अंतर-गोलार्ध तापमान विरोधाभास में उल्लेखनीय कमी के परिणामस्वरूप, एशिया-प्रशांत मानसूनी परिसंचरण कमजोर पड़ रहा है, जिससे भारत में मानसूनी वर्षा में कमी और वैश्विक स्तर पर अप्रत्याशित मौसम की घटनाएं दृष्टिगोचर हो रही हैं।

मानसून का चित्रण

मानसून, सबसे प्राचीन प्रेक्षित मौसमीय घटनाओं में से एक है, जो शीत-शुष्क सर्दियों से उष्ण-आर्द्र ग्रीष्म ऋतु तक मौसम के परिवर्तन को दर्शाती है। मानसून से सम्बद्ध वायु की दिशाओं में विभिन्न समयावधि में होने वाले परिवर्तनों का सिद्धांत भारत में अरब नाविकों द्वारा लाया गया था। उन्होंने उत्तरी अरब सागर में मौसमी वायु की दिशा में होने वाले परिवर्तनों को प्रेक्षित किया। प्राचीन काल में जुलाई माह के दौरान, लाल सागर, उत्तरी अरब सागर और भारतीय पश्चिमी तट पर उत्तर-पश्चिमी हवाओं का प्रभुत्व रहता था, जो अरब नाविकों की आगे की यात्राओं को सुगम बनाता था। इसके विपरीत, नवंबर माह के दौरान, उत्तरी अरब सागर पर उत्तर-पूर्वी हवाएं और लाल सागर पर दक्षिण-पूर्वी हवाएं चलती थीं जो उनकी वापसी यात्राओं में सहायक सिद्ध होती थीं। ''मौसमी वायु परिवर्तन'' के इस सिद्धांत को बाद में, वैश्विक स्तर पर विभिन्न महाद्वीपों और महासागरों (जैसे, एशिया-प्रशांत, अफ्रीकी, ऑस्ट्रेलियाई और अमेरिका) में मानसून तंत्र और संबंधित वर्षा को वर्णित करने के लिए विस्तारित किया गया।

एशिया-प्रशांत मानसून तंत्र सबसे ऊर्जावान, विशिष्ट और विस्तृत मानसून तंत्र है, जिसके अंतर्गत भारतीय उपमहाद्वीप, भारत-चीन प्रायद्वीप, चीन, दक्षिण चीन सागर, कोरिया, जापान और उत्तर-पश्चिमी प्रशांत महासागर सम्मिलित हैं। एशिया-प्रशांत मानसून तंत्र, छह परस्पर अन्तःसम्बद्ध उप-क्षेत्रीय मानसूनों; भारत-चीन प्रायद्वीपीय मानसून; दक्षिण चीन सागर मानसून; दक्षिण एशियाई मानसून; पूर्वी तिब्बत पठार मानसून; पूर्वी एशियाई मानसून; उत्तर-पूर्वी एशियाई मानसून का मिश्रण है। यद्यपि प्रत्येक क्षेत्रीय मानसून की विशिष्ट क्षेत्रीय विशेषताओं में महत्वपूर्ण भिन्नताएं पाई जाती हैं तथापि इनमें कुछ सामान्य संकेत भी प्राप्त होते हैं। यद्यपि मानसून मौलिक रूप से उष्णकटिबंधीय प्रकृति का है, परन्तु इसके द्वितीयक व्यवधान काफी भिन्न होते हैं, जो भूमध्य रेखीय से लेकर उपध्रुवीय प्रभाव प्रदान कर सकते हैं।

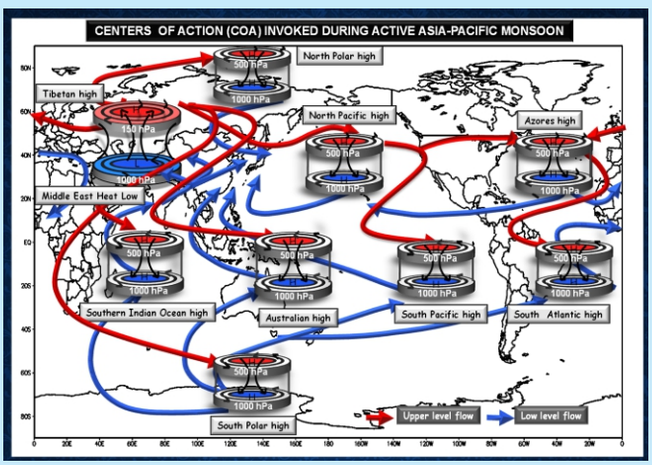

सक्रिय एशिया-प्रशांत मानसून परिसंचरण तंत्र में विभिन्न उच्चता और निम्नता स्थल।

भारतीय मानसून एशिया-प्रशांत मानसून तंत्र का मुख्य घटक है, जिसकी व्यापक परिसंचरण संरचना के अंतर्गत अन्य उप-क्षेत्रीय और स्थानीय मानसून प्रचालित होते हैं। यद्यपि मानसूनी तंत्र की सार्वभौमिक रूप से स्वीकृत परिभाषा पर विचार-विमर्श प्रगति पर है, तथापि यह व्यापक रूप से स्वीकार किया गया है कि भारतीय मानसून, एशिया-प्रशांत तंत्र का सर्वाधिक सुदृढ़, ऊर्जावान और प्रमुख उप-मानसून है।

मानसून एक वृहत्ताम उष्णकटिबंधीय परिसंचरण तंत्र है, जो एशिया-प्रशांत क्षेत्र में ग्रीष्मकालीन मौसमी वर्षा को प्रचालित करता है। वैश्विक स्तर पर वायु परिसंचरण का पारंपरिक चित्रण, मार्च और सितंबर के अंतिम सप्ताह में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, जब दोनों गोलार्ध ऊष्मीय संतुलन में होते हैं। यद्यपि, मानसून के चार महीनों की अवधि के दौरान, मानसून का सामान्य परिसंचरण, पूर्णतः संशोधित और पुनर्वितरित हो जाता है। मानसूनी परिसंचरण पर भूमध्य रेखा और उसके आसपास के अक्षांशीय क्षेत्रों के मध्य, तापमान विरोधाभास का विशिष्ट प्रभाव पड़ता है, जो सूर्य की वार्षिक गतिशीलता द्वारा प्रेरित होता है। उत्तरी गोलार्ध में ग्रीष्म ऋतु के दौरान, तिब्बती पठार पर क्षोभमंडलीय तापमान, वैश्विक माध्य तापमान से लगभग 10°C अधिक होता है, जो इसे एक महत्वपूर्ण ऊष्मा स्रोत बनाता है। यह ऊष्मीय विसंगति, ग्रीष्मकालीन मानसूनी परिसंचरण को प्रारंभ करने के लिए एक महत्वपूर्ण कारक है। वर्तमान में वैज्ञानिकों ने आंकड़ों के विश्लेषण और तकनीकों की प्रगति द्वारा मानसूनी परिसंचरण की त्रि-आयामी संरचना के विस्तृत अध्ययन को संभव कर दिया है, जिससे इसकी गतिशीलता में नवीन और मूल्यवान अंतर्दृष्टियाँ प्राप्त हो रही हैं। (1000, 500 और 150 hPa (हेक्टोपास्कल), भूमि से क्रमशः 2 मीटर, 5.5 किमी और 13.5 किमी की ऊंचाई को दर्शाते हैं)

मध्य पूर्व और चीन-मंगोलिया क्षेत्रों पर स्थित ऊष्ण निम्न दबाव के दो सतही क्षेत्र, सभी दिशाओं से वायु को अपनी ओर खींचते हैं। तिब्बती पठार पर प्रतिचक्रवाती परिसंचरण द्वारा ऊपरी क्षोभ मंडल के निम्न तापीय विचलन

अखिल भारतीय मानसून वर्षा श्रृंखला कई समय-स्तरों पर उतार-चढ़ाव का एक एकीकृत मिश्रण है। वैश्विक क्षोभमंडल की असमान तापमान वृद्धि ने मानसूनी परिसंचरण को अधिक सशक्त लेकिन अत्यधिक विकृत बना दिया है, जिसके कारण विभिन्न क्षेत्रों और समयावधि में विषम वर्षा वितरण हुआ है। यह विकृति चरम वर्षा घटनाओं की बढ़ती अनिश्चितता और असंगति में भी योगदान देती है। वैश्विक तापमान और परिसंचरण विसंगतियाँ विभिन्न स्थानिक और कालिक स्तरों पर गंभीर वर्षा घटनाओं से निकटता से सम्बद्ध हैं। यह वैश्विक और क्षेत्रीय जलवायु प्रणालियों की परस्पर सम्बद्ध प्रकृति को प्रदर्शित करती हैं।

क्षेत्रों से उद्गमित होने वाली वायु सार्वभौम के उपोष्णकटिबंधीय एवं उच्च दवाब वाले ध्रुवीय क्षेत्रों की ओर प्रसारित होती है। मानसून के पूर्ण विकसित चरण (जुलाई-अगस्त) में, भारत-प्रशांत क्षेत्र की विक्षेपित हवाएं, भूमध्य रेखा को पार करके, उष्णकटिबंधीय, उपोष्णकटिबंधीय, समशीतोष्ण और उपध्रुवीय क्षेत्रों से गुजरते हुए, एशियाई भूमि के ऊष्ण निम्न दबाव क्षेत्रों में समाहित हो जाती हैं। इस प्रक्रिया में, अनेक छोटे-छोटे मौसमीय परिवर्तन (जैसे बिंदु, रेखा, गर्त, तरंग, और चक्र) निर्मित होते हैं, जिनके परिणामस्वरुप क्षेत्र में वर्षा होती है। कोरिओलिस बल (पृथ्वी के घूमने के परिणामस्वरूप जनित एक काल्पनिक बल), भौगोलिक विशेषताएं, और ऊष्मा ऊर्जा (diabatic heating) के प्रभाव, मानसूनी वायु परिसंचरण, बादलों के गठन एवं वर्षा तंत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसके अतिरिक्त, स्थानीय घटक भी इन प्रक्रियाओं को प्रभावित करते हैं, जिससे मानसून प्रणाली और अधिक जटिल हो जाती है। इन समस्त पारस्परिक क्रियाओं के परिणामस्वरूप, मानसूनी मौसम पूरे क्षेत्र में अत्यधिक जटिल और परिवर्तनशील हो जाता है।

अखिल भारतीय मानसूनी वर्षा में परिवर्तन (1813-2020)

इस अध्ययन में अखिल भारतीय क्षेत्र के लिए 1813 से 2020 की दीर्घावधि हेतु 316 वर्षामापी स्थलों के लिए मापित मासिक वर्षा आंकड़ों का उपयोग किया गया है। अध्ययन से प्राप्त परिणामों में वार्षिक वर्षा की अधिकतम सीमा 1435.3 मिमी से न्यूनतम सीमा 895.7 मिमी तक प्रेक्षित की गयी है। अध्ययन से पाया गया है कि अखिल भारतीय स्तर पर प्रति वर्ष माध्य वर्षा 1165.9 मिमी होती है। अध्ययन से प्राप्त परिणामों के अनुसार वार्षिक तथा मानसूनी वर्षा (जून–सितंबर) के लिए परिवर्तनशीलता गुणांक का मान क्रमशः 9.1% तथा 9.7% आंकलित किया गया है।

वार्षिक, मौसमी और मासिक वर्षा में अंतःवार्षिक परिवर्तनशीलता का विश्लेषण उन तकनीकों की सहायता से किया गया, जो उच्च-आवृत्ति वाले परिवर्तनों को हटा कर निम्न-आवृत्ति वाले परिवर्तनों को प्रदर्शित करती हैं इस पद्धति से प्राप्त सुचारू श्रृंखला में कई उतार-चढ़ाव दृष्टिगोचर हुए, जो निरंतर आर्द्र या शुष्क स्थितियों वाले कालखंडों को प्रदर्शित करते हैं। वर्षा के इन परिवर्तनों का विश्लेषण करने के लिए, प्रत्येक वर्ष की मौसमी और वार्षिक वर्षा को पाँच श्रेणियों अति शुष्क (833 मिमी से कम), मध्यम शुष्क (834-894 मिमी), सामान्य (895-945 मिमी), मध्यम आर्द्र (946-980 मिमी) एवं आर्द्र (980 मिमी से अधिक) में वर्गीकृत किया गया। अखिल भारतीय मानसूनी वर्षा की इस वर्गीकृत समय श्रृंखला ने मानसून में परिवर्तनों के प्रमुख चरणों को स्पष्ट रूप से प्रदर्शित किया। निम्नलिखित आर्द्र और शुष्क स्थितियों के प्रमुख कालखंड विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं, जो भारत में मानसूनी वर्षा में दीर्घकालिक परिवर्तनशीलता को रेखांकित करते हैं।

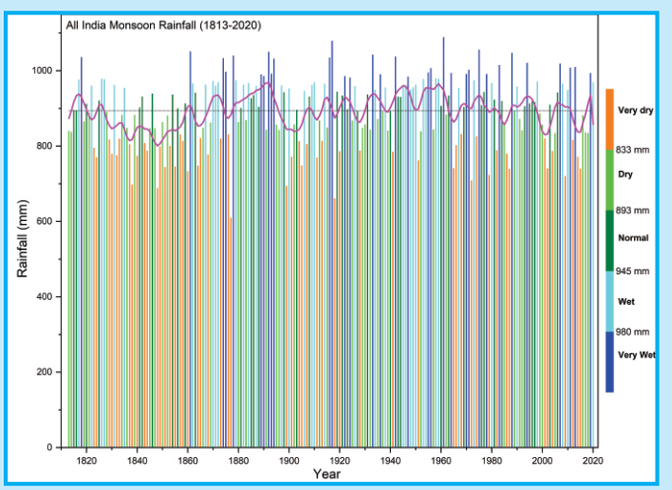

मानसून अवधि (1813-2020) के दौरान देश के वर्गीकृत वर्षा वितरण में अंतःवार्षिक विविधताएं।

1813-1869 (शुष्क काल)-इस अवधि के दौरान, भारत में मानसून की विफलताओं के कारण बार-बार सूखा और अकाल पड़ा, जो मुख्य रूप से अल्प हिमयुग के जलवायु प्रभावों से सम्बद्ध था। इस समय चेन्नई (तब मद्रास) में प्रारम्भ हुए उपकरण आधारित मौसम संबंधी अवलोकन भारत में नियमित मौसम प्रबोधन के प्रारंभ का प्रतीक हैं। इस काल की सबसे महत्वपूर्ण घटनाओं में, सार्वजनिक मांग पर देश के एक भाग से दूसरे भाग तक खाद्यान्न परिवहन तथा व्यापक अकाल के प्रभावों को कम करने के लिए भारत सरकार द्वारा रेल सुविधाओं को प्रारंभ किया जाना था।

1870-1894 (आर्द्र काल)-इस अवधि में मानसून का बेहतर प्रदर्शन हुआ और मौसम संबंधी गतिविधियों के संगठन में महत्वपूर्ण परिवर्तन प्राप्त हुए। केंद्र सरकार ने देश भर में सभी मौसम अवलोकनों का नियंत्रण अपने हाथ में ले लिया, और 1875 में भारत मौसमविज्ञान विभाग की स्थापना की गई जिससे मौसम और जलवायु से संबंधित सेवाओं की देख-रेख की जा सके। इस अवधि के दौरान प्रथम बार, ग्रीष्मकालीन मानसून के प्रदर्शन की भविष्यवाणी के प्रयास किए गए, जो भारत में मानसून पूर्वानुमान के प्रारंभिक चरण थे। इसके अतिरिक्त, इस काल में हिंदी को राष्ट्रीय भाषा के रूप में लोकप्रिय बनाने के आंदोलन की भी शुरूआत हुई।

1895-1941 (शुष्क काल)-इस अवधि के दौरान देश में बार-बार सूखा पड़ा, जिसके कारण थार रेगिस्तान का पूर्व और दक्षिण-पूर्व की ओर विस्तार हुआ। व्यापक संकट के प्रतिउत्तर में, 'भोजन के बदले कार्य' कार्यक्रमों के अंतर्गत कई महलों, किलों और स्मारकों का निर्माण किया गया। इस समय पश्चिमी शैली की शिक्षा देश में तेजी से फैलने लगी। सर जी.टी. वॉकर के नेतृत्व में, भारत मौसमविज्ञान विभाग ने ग्रीमकालीन मानसूनी वर्षा के दीर्घकालिक पूर्वानुमान की शुरुआत की, जिससे व्यवस्थित मानसून भविष्यवाणी की नींव रखी गई।

1942-1964 (आर्द्र काल)-इस आर्द्र चरण में, भारत में जल संसाधन

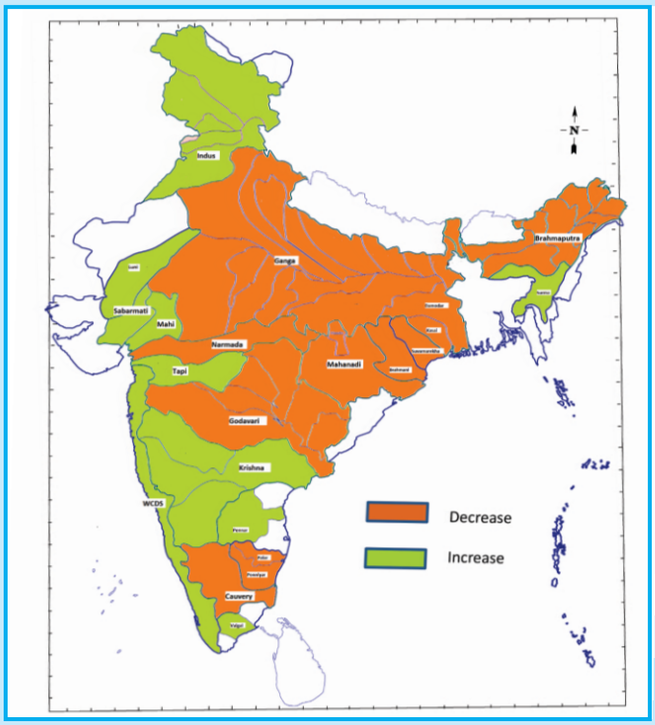

देश के प्रमुख नदी जलाशयों पर 1901-2000 की तुलना में 2001-2020 की वार्षिक वर्षा की प्रवृत्ति का भौगोलिक वितरण

प्रबंधन को बढ़ाने के लिए वृहत्त पैमाने पर जलाशयों, बांधों और नहर तंत्र का निर्माण प्रारंभ हुआ। इस अवधि के दौरान देश की जनसंख्या में तीव्र वृद्धि हुई, जिससे कृषि और घरेलू जल की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए महत्वपूर्ण बुनियादी संरचना के विकास की आवश्यकता महसूस की गयी।

1965-1994 (परिवर्तनीय काल)-तेजी से बढ़ती जनसंख्या की खाद्यान्न मांगों को पूर्ण करने के लिए, केंद्र सरकार ने हरित क्रांति के अंतर्गत अनेक कदम उठाए इनमें उन्नत कृषि प्रौद्योगिकियाँ, बेहतर सिंचाई प्रणालियाँ और जल संसाधन प्रबंधन सम्मिलित थे। इसके परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन में तीव्र वृद्धि हुई। इसके अतिरिक्त, खाद्यान्न के वृहत्त पैमाने पर भंडारण के लिए प्रभावी तंत्र विकसित किये गए, जिससे इस परिवर्तनीय मानसून चरण के दौरान देश की खाद्य आपूर्ति को सुरक्षित रखने में सहायता प्राप्त हुई।

1995-2020 (शुष्क काल)-यद्यपि उत्तरी गोलार्ध में सतही वायु तापमान बढ़ रहा था, इस अवधि के दौरान ग्रीष्मकालीन मानसून का प्रदर्शन कमजोर हो गया। प्रस्तुत चित्र में देश की प्रमुख नदियों में मानसूनी वर्षा में वर्तमान के रुझानों की पद्धति को दर्शाया गया है। जबकि भारत के अधिकांश क्षेत्रों में मानसूनी वर्षा में गिरावट की प्रवृत्ति देखी गयी परन्तु, उत्तर-पश्चिम भारत में सकारात्मक रुझान देखा गया जो मानसूनी प्रदर्शन में क्षेत्रीय परिवर्तनशीलता को प्रदर्शित करता है।

वर्षा-उत्पादक मौसम प्रणालियाँ तथा अत्यधिक वर्षा की घटनाएं

देश के प्रत्येक क्षेत्र में विशिष्ट मौसमीय स्थितियाँ होती हैं, जो उस क्षेत्र के मौसम तंत्र पर आधारित होती हैं। वायु, जो इन तंत्रों का प्रमुख घटक है, अपने स्रोत से प्रस्थान के बाद कई सप्ताह तक अपने तापीय और आर्द्र गुणधर्म बनाए रखती है। वर्षा उत्पन्न करने वाली मौसम प्रणालियाँ सामान्यतः तब बनती हैं जब दो या अधिक वायु द्रव्यमान, जिनके गुणधर्म (जैसे शीत-शुष्क और आर्द्र-उष्ण) परस्पर एक दूसरे से विपरीत होते हैं, आपस में पारस्परिक अभिक्रिया करते हैं। ये तंत्र स्थानीय उष्णता, आर्द्रता, और दबाव वाले क्षेत्रों द्वारा संचालित होते हैं और पृथ्वी के घूर्णन और स्थलाकृति से प्रभावित होते हैं। वैश्विक स्तर पर, चार प्रमुख प्रकार के मौसम तंत्र दृष्टिगोचर होते हैं:

- **रेखीय तंत्रः** जैसे फ्रंट और स्क्वाल लाइन, बड़े पैमाने पर विपरीत गुणों वाली वायु प्रवाहों के संगम और चैनलिंग से उत्पन्न होते हैं।
- **वृत्ताकार तंत्रः** जैसे चक्रवात और दबाव क्षेत्र, एक या अधिक वायु द्रव्यमानों के घूर्णन या विचलन से बनते हैं।
- **तरंग तंत्रः** जैसे पश्चिमी विक्षोभ, जो गतिमान पश्चिमी तरंगों में गर्त और रिज के आगमन से उत्पन्न होते हैं।
- **मेसोस्केल तंत्रः** जैसे आंधी तूफान और भंवर, जो अत्यधिक स्थानीयकृत और अल्पकालिक घटनाएं होती हैं।

वैश्विक स्तर पर, वर्षा क्षेत्र को वर्षा के रूप, मात्रा और मौसमी प्रवृत्तियों के आधार पर निम्न क्षेत्रों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

- **भूमध्यरेखीय क्षेत्रः** पूरे वर्ष भर प्रचुर मात्रा में वर्षा होती है।
- **उत्तर और दक्षिण उष्णकटिबंधीय क्षेत्रः** गर्मियों में आर्द्र और सर्दियों में शुष्क रहता है।
- **उत्तर और दक्षिण उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रः** सभी मौसमों में शुष्क रहते हैं।
- **उत्तर और दक्षिण मध्य अक्षांश क्षेत्रः** सर्दियों में आर्द्र और गर्मियों में शुष्क रहता है।
- **उत्तर और दक्षिण उपध्रुवीय क्षेत्रः** पूरे वर्ष भर पर्याप्त वर्षा होती है।
- **उत्तर और दक्षिण ध्रुवीय क्षेत्रः** सभी

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव के कारण देश के शुष्क क्षेत्रों में मानसून के दौरान सूखे की स्थिति।

मौसमों में कम वर्षा होती है।

प्रत्येक वर्ष, चरम मानसूनी वर्षा के कारण भारत में गंभीर बाढ़ और आपदाओं का सामना करना पड़ता है, इसके अतिरिक्त देश के अधिकांश भागों में वृहत्त पैमाने पर सूखे की स्थिति भी पाई जाती है। प्राप्त होने वाले वर्ष में स्थानिक एवं कालिक स्तर पर प्रत्येक वर्ष व्यापक भिन्नता पाई जाती है। राष्ट्रीय बाढ़ आयोग के अनुसार, भारत में 40 मिलियन हेक्टेयर से अधिक बाढ़ संभावित भूमि क्षेत्र है, जिसमें प्रत्येक वर्ष लगभग 7.5 मिलियन हेक्टेयर भूमि बाढ़ से प्रभावित होती है और लगभग 1,600 लोगों के जान माल की हानि होती है। जलवायु परिवर्तन पर IPCC की रिपोर्ट के अनुसार, एक गर्म होती जलवायु द्वारा, चरम घटनाओं की तीव्रता में वृद्धि होने की संभावना है, क्योंकि सतही गर्मी और ऊपरी वायुमंडल में दीर्घ-तरंगीय शीतलन के कारण जल चक्र तीव्र होता है। इन चरम घटनाओं से सम्बद्ध मानसूनी परिसंचरण की स्थिति, दिशा, आकार और तीव्रता में उल्लेखनीय भिन्नता हो सकती है। यह देखा गया है कि, स्थानीय और अल्पकालिक भारी वर्षा घटक, अधिकांशतः वृहत्त पैमाने पर दीर्घकालिक तीव्र वर्षा गतिविधियों का भाग होते हैं। उदाहरणार्थ, 26-27 जुलाई, 2005 के दौरान, मुंबई में एक ही दिन में 940 मिमी से अधिक वर्षा हुई। अध्ययन से ज्ञात हुआ कि उस अवधि के दौरान सम्पूर्ण प्रायद्वीपीय क्षेत्र में भारी वर्षा की स्थिति थी, जिससे देश में अब तक का सबसे अधिक दैनिक वर्षा संचय (98 बिलियन घन मीटर) आंकलित किया गया। उपकरणों, उपग्रहों, रडार, और संख्यात्मक मौसम भविष्यवाणी निदर्श से प्राप्त आंकड़ों से यह संकेत मिलता है कि मुंबई में यह अभूतपूर्व वर्षा स्थानीय स्तर की चरम वर्षा घटनाओं में एक महत्वपूर्ण बढ़ती प्रवृत्ति को दर्शाती थी। कई अध्ययनों ने यह भी प्रलेखित किया है कि ग्रीष्मकालीन मानसूनी वर्षा की चरम घटनाओं की आवृत्ति बढ़ रही है, जो मुख्य रूप से पर्यवेक्षी, मेसोस्केल और माइक्रोस्केल मौसम गतिविधियों में उल्लेखनीय वृद्धि के कारण है। IPCC की छठवीं मूल्यांकन रिपोर्ट का अनुमान है कि एक उष्ण जलवायु में जल चक्र की तीव्रता के कारण, प्रति 1°C अतिरिक्त उष्णता वृद्धि से चरम वर्षा में 7% की वृद्धि होगी परिणामतः ऐसी घटनाएं, की पुनरावृत्ति बारम्बार होगी। भारत में चरम वर्षा घटनाओं की बढ़ती आवृत्ति के लिए मुख्य रूप से निम्नलिखित कारकः बंगाल की खाड़ी और अरब सागर के ऊपर सिनॉप्टिक-स्तर की गतिविधियों में वृद्धि, असामान्य संवहनात्मक अस्थिरता, भूमध्यरेखीय हिंद महासागर के ऊपर वायुमंडलीय स्थितियाँ तथा अन्य संबंधित जलवायु और स्थानीय कारक उत्तरदाई हैं।

हाल के वर्षों में उत्तर-पश्चिम हिमालय क्षेत्र में भारी वर्षा की घटनाओं की आवृत्ति में काफी वृद्धि हुई है। यह वृद्धि, क्षेत्र की अत्यधिक जटिल स्थलाकृति और उष्णकटिबंधीय एवं वाह्य-उष्णकटिबंधीय वायुमंडलीय प्रणालियों के मध्य क्रियाशीलता का परिणाम है। इन घटनाओं को सामान्यतः बादल फटने के रूप में जाना जाता है, जिसमें एक लघु क्षेत्र में बहुत कम समय में मूसलाधार वर्षा होती हैं। अंतर्राष्ट्रीय आपदा के आंकड़ों के अनुसार, विगत 30-40 वर्षों में पश्चिमी हिमालय में अत्यधिक वर्षा की घटनाओं में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। 2010 के बाद से भारतीय हिमालयी क्षेत्र के अंतर्गत स्थित, लेह, उत्तराखंड, जम्मू और कश्मीर, और हिमाचल प्रदेश राज्यों में इस प्रकार की लगभग 20 से अधिक प्रमुख घटनाएं आंकलित की गई हैं। इसके अतिरिक्त, लगभग पाँच घटनाएं पाकिस्तान के उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्र में, और दो-दो घटनाएं नेपाल और चीन में रिकॉर्ड की गई हैं। उत्तर-पश्चिम हिमालय, मानसून के मौसम के दौरान ऐसी चरम घटनाओं के प्रति विशेष रूप से संवेदनशील है। इसका कारण क्षेत्र की जटिल स्थलाकृति और उष्णकटिबंधीय एवं वाह्य- उष्णकटिबंधीय प्रणालियों के बीच की क्रियाशीलता है। भारत के अन्य क्षेत्र भी प्रत्येक वर्ष सूखे की अवधि के दौरान आश्चर्यजनक रूप से कभी-कभी चरम वर्षा की घटनाओं का अनुभव करते हैं। ये अभूतपूर्व घटनाएं सामान्यतः गहरे पश्चिमी गर्तों और भारतीय महासागर से आने वाली दक्षिण-पश्चिमी हवाओं के बीच अंतःक्रिया के कारण होती हैं, जिनमें प्रशांत महासागर से आने वाली पूर्वी हवाएं भी समाहित हो जाती हैं। इन अंतःक्रियाओं के परिणामस्वरूप फिलीपींस से लेकर सिंधु बेसिन तक फैले विस्तृत और तीव्र मानसूनी गर्तों का विकास होता है। अरब सागर और बंगाल की खाड़ी इन प्रणालियों को अत्यधिक आर्द्रता प्रदान करते हैं। इसके साथ ही, असामान्य मानसूनी गर्त के भीतर मौसम प्रणालियाँ विकसित होती हैं जो परस्पर अंतःक्रिया करती हैं। क्षेत्र की स्थलाकृति इन घटनाओं की तीव्रता में और अधिक वृद्धि कर देती है, जिसके परिणामस्वरूप क्षेत्र में चरम वर्षा घटनाओं की आवृत्ति और तीव्रता में वृद्धि पाई जाती है।

महत्वपूर्ण निष्कर्षः

विगत दो दशकों (2001-2020) के दौरान, अखिल भारतीय वार्षिक और मानसूनी वर्षा में पिछली शताब्दी (1901-2000) की तुलना में 1.1% की कमी आई है। यद्यपि, यह गिरावट सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण नहीं है। क्षोभमंडल तापमान में एक महत्वपूर्ण वैश्विक उष्णता की प्रवृत्ति का अवलोकन किया गया है। परिणाम दर्शाते हैं कि उत्तरी गोलार्ध में उष्णता की दर में दक्षिणी गोलार्ध की तुलना में वृद्धि अधिक है। यह भी पाया गया है कि वर्षा वाले महीनों के दौरान, उत्तरी उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्र और तिब्बती पठार में असामान्य गर्मी देखी जाती है, जबकि सबसे शुष्क महीनों के दौरान ये क्षेत्र ठंडे हो जाते हैं, जो कि तापमान विसंगतियों और वर्षा पद्धति के मध्य के सुदृढ़ संबंध को दर्शाते हैं।

अखिल भारतीय मानसून वर्षा श्रृंखला कई समय-स्तरों पर उतार-चढ़ाव का एक एकीकृत मिश्रण है। वैश्विक क्षोभमंडल की असमान तापमान वृद्धि ने मानसूनी परिसंचरण को अधिक सशक्त लेकिन अत्यधिक विकृत बना दिया है, जिसके कारण विभिन्न क्षेत्रों और समयावधि में विषम वर्षा वितरण हुआ है। यह विकृति चरम वर्षा घटनाओं की बढ़ती अनिश्चितता और असंगति में भी योगदान देती है। वैश्विक तापमान और परिसंचरण विसंगतियाँ विभिन्न स्थानिक और कालिक स्तरों पर गंभीर वर्षा घटनाओं से निकटता से सम्बद्ध हैं। यह वैश्विक और क्षेत्रीय जलवायु प्रणालियों की परस्पर सम्बद्ध प्रकृति को प्रदर्शित करती हैं।

मानसून परिवर्तनशीलता और चरम घटनाओं से उत्पन्न चुनौतियों का समाधान करने के लिए उन्नत वैज्ञानिक और तकनीकी उपकरण विकसित करने की तत्काल आवश्यकता है। बाढ़ से होने वाले जान-माल, अर्थव्यवस्था, और पर्यावरण से होने वाली हानि को कम करने के लिए कुशल आपदा प्रबंधन प्रणाली आवश्यक है। वार्षिक वर्षा का प्रभावी संग्रहण और वितरण सुनिश्चित करने के लिए आत्मनिर्भर और तकनीकी रूप से उन्नत दृष्टिकोण अपनाना महत्वपूर्ण है। यह रणनीति दीर्घकालिक जलवायु भविष्यवाणियों पर निर्भरता को कम करेगी और कृषि, विद्युत उत्पादन और घरेलू उपयोग के लिए जल संसाधन प्रबंधन को स्थायी बनाएगी।

संपर्क करें:
डॉ. अश्विनी रानडे
राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान,
रुड़की।

चारू पाण्डेय

जीवन का जल है आधार

नहीं करो जल को बरबाद,
जीवन का आधार है जल।
जल है तो सुरक्षित है कल,
रीसाइकल, रीयूज करो,
जल का सही उपयोग करो।
कहां कैसे और कितना करना है,
जल को कैसे खूब बचाएं,
आओ इसका ज्ञान बढ़ाएं।
गर्मी की हो सजग तैयारी,
अब आयी हम सबकी बारी।
हमसे अच्छे जंतु जानवर,
कभी ना करते जल बरबाद।
बूँद-बूँद मत करो बेकार,
जीवन का जल है आधार।
जल है जीवन का आधार, जल न बहाओ बेकार,
जल की कीमत को पहचानो,
अपनी ही नहीं सब की जरूरत को जानो,
जल सबको है जीवन देता, धरती को हरियाली देता।
जल से ही धरती पर जीवन,
जल से ही वन और उपवन,
जल है जीवन का आधार, जल न बहाओ यूँ बेकार।
जीवन का आधार है जल, उस बिन निराधार है हर पल।
जल है तो बेहतर कल है,
जल है जीवन का आधार, जल न बहाओ बेकार।

संपर्क करें।
चारू पाण्डेय
राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान,
रुड़की।

डॉ. नवीन कुमार, डॉ. रामकृष्ण राय एवं डॉ. अभिषेक राणा

यन्त्रीकरण द्वारा कृषि में जल संचयन

कृषि में परंपरागत फसलोत्पादन विधियों को अपनाने से जल की सर्वाधिक क्षति होती है जबकि वर्तमान में जल बचत हेतु अनेक सिंचाई विधियाँ एवं कृषि पद्धतियां उपलब्ध हैं, जिन्हें अपनाकर प्रति इकाई क्षेत्र से कम जल एवं श्रम से अधिक पैदावार ले सकते हैं। जल संबंधित इन विषम परिस्थितियों में आयवर्धक, टिकाऊ एवं समृद्ध कृषि तभी संभव होगी जब हम संरक्षित कृषि तकनीक को बढ़ावा देंगे। संरक्षित कृषि के लिए कई प्रकार के कृषि यन्त्र भारत में उपलब्ध हैं। लेजर लैंड लेबलर, नो टिल ड्रिल, टर्बो हैप्पी सीडर, रिले सीडर्स ऐसे कृषि यंत्रों में अग्रणी हैं। ये यन्त्र कृषि जल संरक्षण एवं दक्षता दोनों में वृद्धि करते हैं और कृषि को टिकाऊ एवं समृद्ध बनाते हैं। इन कृषि यंत्रों के उपयोग से कृषि के लिए सिंचाई हेतु फसलों को कम जल की आवश्यकता होती है।

सिंचाई, फसलों की जल की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए कृत्रिम रूप से जल प्रदान करने की प्रक्रिया है। सिंचाई के माध्यम से फसलों को पोषक तत्व भी प्रदान किए जा सकते हैं। सिंचाई के लिए जल के विभिन्न स्रोत कुएं, तालाब, झीलें, नहरें, ट्यूबवेल, बांध आदि हैं। फसल की पैदावार बढ़ाने के लिए सिंचाई की विभिन्न विधियां अपनाई जाती हैं। विभिन्न सिंचाई प्रणालियों का प्रयोग विभिन्न प्रकार की मिट्टी, जलवायु, फसलों और संसाधनों के आधार पर किया जाता है। किसानों द्वारा अपनाई जाने वाली सिंचाई की प्रमुख तकनीकों में सतही सिंचाई, चेक डैम सिंचाई, बूँद एवं फुहार सिंचाई, इत्यादि प्रमुख हैं। जल कृषि का एक महत्वपूर्ण घटक है और यह फसलों के बेहतर उत्पादन पर विशेष महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है। जल की कमी से फसलों का उत्पादन लगभग असंभव हो जाता है। अगर फसलों को उचित समय पर उचित मात्रा में जल उपलब्ध न कराया जाए तो अच्छे बीज और संतुलित उर्वरक के उपयोग के बावजूद फसल उत्पादन काफी घट जाता है। फसलों के विकास के चरण में मृदा में नमी की कमी होती है तो उसका सबसे पहला प्रभाव पत्तियों और तनों की वृद्धि पर पड़ता है। फसलें अपने रंध्र बंद करके अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करती हैं। ऐसी स्थिति में फसलें विकास के लिए आवश्यक एंजाइम और प्रोटीन का निर्माण कम कर देती हैं। वहीं पशुपालन के लिए भी जल की पर्याप्त उपलब्धता महत्वपूर्ण है और मत्स्यपालन तो सीधे तौर पर जल संसाधनों पर निर्भर है। विश्व की जनसंख्या की लगभग 17 प्रतिशत आबादी भारत में रहती है और भारत के पास विश्व में उपलब्ध कुल जल संसाधनों का केवल 4 प्रतिशत भाग ही उपलब्ध है। भारत की बढ़ती हुई आबादी एवं सीमित गुणवत्तापूर्ण जल संसाधनों के कारण भारत के लिए स्वच्छ जल आपूर्ति एक समस्या बनती जा रही है। भारत के शहरी क्षेत्र जल की पर्याप्त आपूर्ति से वंचित हो रहे हैं। इसके अतिरिक्त शहरी क्षेत्रों की जल आपूर्ति का 40 प्रतिशत भाग भूजल पर निर्भर है। जिसके कारण प्रति वर्ष भूजल स्तर गिरता जा रहा है। देश के कुल कृषि क्षेत्रफल का 60 प्रतिशत भूभाग अभी भी वर्षा द्वारा ही सिंचित होता है।

कृषि में परंपरागत फसलोत्पादन विधियों को अपनाने से जल की सर्वाधिक क्षति होती है जबकि वर्तमान में जल बचत हेतु अनेक सिंचाई विधियाँ एवं कृषि पद्धतियां उपलब्ध हैं, जिन्हें अपनाकर प्रति इकाई क्षेत्र से कम जल एवं श्रम से अधिक पैदावार ले सकते हैं। जल संबंधित इन विषम परिस्थितियों में आयवर्धक, टिकाऊ एवं समृद्ध कृषि तभी संभव होगी जब हम संरक्षित कृषि तकनीक को बढ़ावा देंगे। संरक्षित कृषि के लिए कई प्रकार के कृषि यन्त्र भारत में उपलब्ध हैं। लेजर लैंड लेबलर, नो टिल ड्रिल, टर्बो हैप्पी सीडर, रिले सीडर्स ऐसे कृषि यंत्रों में अग्रणी हैं।

ये यन्त्र कृषि जल संरक्षण एवं दक्षता दोनों में वृद्धि करते हैं और कृषि को टिकाऊ एवं समृद्ध बनाते हैं। इन कृषि यंत्रों के उपयोग से कृषि के लिए सिंचाई हेतु फसलों को कम जल की आवश्यकता होती है।

लेजर लैंड लेवेलर के मुख्य भाग

लेजर लैंड लेवलर

बेहतर फसल उत्पादन के लिए भूमि का समतल होना बहुत आवश्यक होता है। आधुनिक उपकरण जैसे लेजर लैंड लेवलर द्वारा भूमि को समुचित ढंग से समतल कर समय, मेहनत और धन की बचत कर सकते हैं। लेजर लेंड लेवलर एक ऐसा उपकरण है जिसमें लेजर किरणों का प्रयोग कर ऊबड़-खाबड़ भूमि को सटीक एवं प्रभावी ढंग से समतल किया जाता है। वह ऊँची जमीन की मिट्टी काटकर नीची जमीन पर भर देता है। इसमें लेजर ट्रांसमीटर, लेजर रिसीवर कंट्रोल बॉक्स, हाइड्रोलिक वाल्व, हाइड्रोलिक सिलिंडर, स्क्रेपर बकेट और व्हील लगा रहता है। लेजर किरण ट्रांसमीटर से उत्सर्जित होती है और पूरे क्षेत्र में फैल जाती है, जिससे प्रकाश की एक आभासी किरण बनती है। लेवलिंग बकेट पर लगा रिसीवर लेजर रेफरेंस प्लेन की स्थिति का पता लगाता है और नियंत्रण बॉक्स को सिग्नल भेजता है। नियंत्रण बॉक्स संकेतों के आधार पर हाइड्रोलिक नियंत्रण वाल्व को खोलता या बंद करता है, जो वांछित ग्रेड प्राप्त करने के लिए स्क्रेपर बकेट को ऊपर या नीचे करता है। यह उन्नत तकनीक प्रवणता की वांछित डिग्री के साथ खेत की सतह को उसकी औसत ऊँचाई तक समतल करने में सक्षम बनाती है, जिसके परिणामस्वरूप बेहतर कृषि पद्धतियां, उच्च फसल पैदावार, कुशल फसल प्रबंधन तथा जल संरक्षण होता है। यह कृषि यन्त्र 45 अश्व शक्ति से अधिक के ट्रैक्टर द्वारा चालित होता है। कई अध्ययनों से यह ज्ञात होता है कि लेजर लैंड लेवलिंग से सिंचाई दक्षता बढ़ जाने के कारण सिंचाई जल में 20-25% की बचत होती है। इसके उपयोग से चावल, गेहूं और गन्ने की उत्पादकता में 15-25% की बढ़ोतरी देखी गयी है।

जीरो टिल सीड कम फर्टिलाइजर ड्रिल

भारत में धान-गेंहू फसल की टिकाऊ सघनता और उन्नत सस्य प्रबंधन क्रियाओं को अपनाने जैसेः समय से बुवाई आदि में जीरो टिलेज तकनीक की एक महत्वपूर्ण भूमिका है। लगभग तीन दशक पूर्व कृषि लागत कम करने और रबी फसलों की बुवाई में शीघ्रता लाने के लिए जीरो टिलेज तकनीक को अपनाया गया था। समय के साथ-साथ धान-गेंहू फसल चक्र में संरक्षित खेती की अवधारणा का प्रचलन हुआ। सिंधु-गंगा के पूर्वी मैदानों में जीरो टिलेज तकनीक फसल प्रणाली में उत्पादकता बढ़ाने के लिए सार्थक अवसर प्रदान करने में सहायक सिद्ध हुई है। जीरो टिल सीड कम फर्टिलाइजर ड्रिल, ट्रेक्टर चालित कृषि यन्त्र है और यह बिना जोते हुए खेत में बीज एवं उर्वरक की एक साथ बुआई करने में सक्षम है। इसमें बीज की बुआई करने के लिए टी टाइप फरो ओपनर लगा रहता है। जीरो टिल सीड कम फर्टिलाइजर ड्रिल, समान्यतः छह पंक्ति वाला तथा लगभग 1.2 मीटर चौड़ा होता है। इसमें बीज गिराने के लिए फ्लूटेड रोलर लगा रहता है। यह कृषि यन्त्र 35 अश्व शक्ति से अधिक के ट्रेक्टर द्वारा चालित होता है। इसकी कार्य क्षमता 0.35-0.40 हैक्टेअर प्रति घंटा है। परंपरागत जुताई कर बुआई करने में अधिक समय लगने के कारण इस मशीन द्वारा गेंहू की बुआई करने से इस तकनीकी से तकरीबन 10-15% सिंचाई जल की बचत होती है। इस विधि से बुआई में श्रम, ऊर्जा तथा सिंचाई का कम खर्च लगता है। इसके उपयोग के दौरान धान के पुराल को हटाना आवश्यक होता है। इस कृषि यन्त्र का प्रयोग दूसरी फसलों जैसे कि धान, मसूर, चना, मक्का इत्यादि की बुआई में भी कर सकते हैं। जीरो टिलेज मशीन का प्रयोग लघु कृषि में भी दो पहिया ट्रैटर की सहायता से सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

हैप्पी सीडर

दक्षिण एशिया में कम्बाईन से धान की कटाई के बाद इन्वर्टिड-टी वाली जीरो टिलेज मशीन से गेंहू की बुआई करते समय फसल के अवशेषों के मशीन में फँसने की समस्या आती थी। इसीलिए जीरो टिलेज मशीन में क्रमबद्ध तकनीकी सुधार कर हैप्पी सीडर का निर्माण किया गया है। इसके प्रयोग से धान की कटाई के बाद संपूर्ण फसल अवशेष (पुराल) में गेंहू की सीधी बुआई सरलता से की जा सकती है। फसल के बीज को अच्छी तरह से बुआई तथा उर्वरकों का सही स्थापन करने के लिए हैप्पी सीडर का प्रयोग करना उपयुक्त है। हैप्पी सीडर बिना जुताई वाले खेत में सीधे गेंहू की बुआई करने के लिए जाना जाता है। यह फसल अवशेष प्रबंधन के लिए महत्वपूर्ण कृषि यन्त्र है। सामान्य

भारत सरकार द्वारा कृषि यंत्रों को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न राज्यों के अन्तर्गत कृषि यंत्रीकरण योजना चलाई जाती है। बिहार के सन्दर्भ में बात करें तो बिहार सरकार द्वारा शुरू की गयी बिहार कृषि यन्त्र सब्सिडी योजना के अन्तर्गत राज्य के किसानों को महंगे कृषि यंत्रों की खरीद पर 40% से 80% की सब्सिडी का लाभ दिया जा रहा है। कृषि यंत्र सब्सिडी योजना का मुख्य उद्देश्य बिहार के किसानों को अपने कृषि कार्यों में आधुनिक कृषि यंत्रों की खरीद हेतु सक्षम बनाना है। इस योजना के माध्यम से उन किसानों को सब्सिडी का लाभ दिया जाएगा जो किसान धन की कमी होने के कारण कृषि से संबंधित यंत्र नहीं खरीद पा रहे हैं। बिहार कृषि यंत्र सब्सिडी योजना उन सभी यंत्रों को कम कीमत पर उपलब्ध कराती है। जो कृषि कार्य के लिए आवश्यक हैं।

मल्टी क्रॉप प्लांटर के भाग के बारे में किसान जानकारी लेते हुए

जीरो टिल सीड कम फर्टिलाइजर ड्रिल से गेंहू बुआई में कुछ समस्याएं आती हैं। जैसे सीड ड्रिल फरो ओपनर में पराली का फंस जाना, सीड मीटरिंग ड्राइव व्हील का खराब संकर्षण और बहुत ज्यादा फसल अवशेष की दशा में कृषि यन्त्र को बार-बार ऊपर उठाना जिसके कारण बीज का जमीन में सही गहराई तथा सही दूरी पर नहीं डलना। इन समस्याओं के समाधान के लिए हैप्पी सीडर कृषि यन्त्र का आविष्कार हुआ जो कम्बाइन से कटे हुए धान के खेत में बिना पराली जलाए गेंहू की सीधी बुआई करने में सक्षम होता है। इस कृषि यन्त्र में फसल अवशेष प्रबंधन के लिए जे-टाइप फ्लाईल ब्लेड लगा रहता है जो तीव्र गति (1000-1300 RPM) पर घूमता है तथा धान के डंठल को बीज बुआई करने वाले टाइन के सामने से काटता है। यह ट्रेक्टर के पी.टी.वो. शाफ्ट द्वारा द्वारा चालित कृषि यन्त्र है एवं इसकी कार्य क्षमता 0.3 से 0.4 हेक्टेयर प्रति घंटा है। इस कृषि यन्त्र से बुआई करने पर मृदा स्वास्थ्य अच्छा रहता है। कृषि जल में बचत होती है तथा उपज में वृद्धि होती है। शोध में पाया गया है कि हैप्पी सीडर से गेंहू की बुआई में 75-100 मिलीमीटर कृषि सिंचाई जल की बचत होती है तथा कृषक पद्धति की तुलना में कृषि यन्त्र से बुआई करने पर 5% तक उपज में वृद्धि सम्मत है।

मल्टीक्रॉप प्लांट

धान की सीधी बुआई संसाधन संरक्षित तकनीक है। धान की रोपाई में अधिक श्रम के साथ-साथ अधिक सिंचाई जल की आवश्यकता होती है। वहीं धान की सीधी बुआई में खेत को कीचड़ (पडलिंग) करने की भी आवश्यकता नहीं होती जिससे कृषि जल की बचत होती है। धान की सीधी बुआई के लिए उन्नत कृषि यंत्र भी उपलब्ध हैं जैसेः इंक्लाइंड प्लेट प्लांटर, पैडी-व्हीट सीडर आदि। मल्टी क्रॉप प्लांटर में धान के बुवाई के लिए बीज बक्सा, इंक्लिनेड घुमावदार बीज मीटरिंग प्लेट, बीज मीटरिंग स्ट्रिप, बीज डिलीवरी पाइप और सीड बूट लगे रहते हैं। इन घुमावदार बीज मीटरिंग प्लेट पर ग्रूव लगे रहते हैं जो बीज को बीज डिलीवरी पाइप में ले जाने तक मदद करते हैं। इन प्लांटर में बीज दर बढ़ाने और घटाने की व्यवस्था दी जाती है। धान की सीधी बुआई करने वाला यह प्लांटर पंक्ति से पंक्ति की दूरी (20 सेंटीमीटर) एवं पौधे से पौधे की उचित दूरी पर धान की बुआई करने में सक्षम होता है। इस प्लांटर से बुआई करने पर प्रति हेक्टर कृषि क्षेत्र हेतु 15-20 किलोग्राम बीज की आवश्यकता होती है। यह प्लांटर बीज की बुवाई 2-3 सेंटीमीटर पर करने में सक्षम होता है। इस प्लांटर की चौड़ाई लगभग 1.8 मीटर होती है तथा इसके कार्य करने की क्षमता 0.4 हेक्टर प्रति घंटा है।

शून्य जुताई विधि से विभिन्न फसल प्रणालियों में सिंचाई जल की उत्पादकता

फसल-प्रणाली	कुल प्रदत्त सिंचाई जल (हैक्टेअर मिमी)		सिंचाई जल उत्पादकता (कि.ग्रा./हैक्टेअर मिमी)	
(अ) मक्का-गेहूँ	खरीफ	रबी	खरीफ	रबी
शून्य जुताई व मेड़ों पर बुआई	150	250	22.67	20.40
परम्परागत समतल बुआई	210	350	12.57	14.69
(ब) अरहर-गेहूँ				
शून्य जुताई व मेड़ों पर बुआई	350	250	15.00	19.72
परम्परागत समतल बुआई	490	350	7.67	13.89
(स) कपास-गेहूँ				
शून्य जुताई व मेड़ों पर बुआई	550	250	16.93	19.40
परम्परागत समतल बुआई	770	350	9.00	13.86

कृषि यंत्रीकरण योजना

भारत सरकार द्वारा कृषि यंत्रों को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न राज्यों के अन्तर्गत कृषि यंत्रीकरण योजना चलाई जाती है। बिहार के सन्दर्भ में बात करें तो बिहार सरकार द्वारा शुरू की गयी बिहार कृषि यन्त्र सब्सिडी योजना के अन्तर्गत राज्य के किसानों को महंगे कृषि यंत्रों की खरीद पर 40% से 80% की सब्सिडी का लाभ दिया जा रहा है। कृषि यंत्र सब्सिडी योजना का मुख्य उद्देश्य बिहार के किसानों को अपने कृषि कार्यों में आधुनिक कृषि यंत्रों की खरीद हेतु सक्षम बनाना है। इस योजना के माध्यम से उन किसानों को सब्सिडी का लाभ दिया जाएगा जो किसान धन की कमी होने के कारण कृषि से संबंधित यंत्र नहीं खरीद पा रहे हैं। बिहार कृषि यंत्र सब्सिडी योजना उन सभी यंत्रों को कम कीमत पर उपलब्ध कराती है। जो कृषि कार्य के लिए आवश्यक हैं। बिहार कृषि सब्सिडी योजना में 33 से अधिक प्रकार के यंत्रों पर सब्सिडी दी जाती है। इसके द्वारा 50% से अधिक अनुदान पर कृषि यंत्रों की खरीद कर सकते हैं। बिहार यंत्रीकरण सब्सिडी योजना के तहत पंजीकृत किसानों को प्रत्येक वर्ष अनुदान पर ट्रैक्टर, रोटावेटर, जीरो टिल सीड ड्रिल, हैप्पी सीडर और कृषि से संबंधित सभी यन्त्र अनुदान पर दिए जाते हैं।

संपर्क करें।

डॉ. नवीन कुमार, डॉ. रामकृष्ण राय एवं डॉ. अभिषेक राणा
कृषि विज्ञान केन्द्र, गोपालगंज,
बिहार-841 501

डॉ. विनोद कुमार गुप्ता

बढ़ता वायु प्रदूषण और मानव स्वास्थ्य

राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली को देश के 255 शहरों में सर्वाधिक प्रदूषित माना गया है। दूसरे नम्बर पर देश का सर्वाधिक प्रदूषित शहर बिहार का भागलपुर रहा। जनवरी, 2024 में प्रदूषण को लेकर ऊर्जा एवं स्वच्छ वायु अनुसंधान केन्द्र (CREA) द्वारा जारी रिपोर्ट में इसका खुलासा हुआ है। इसके अनुसार, देश के 10 प्रदूषित शहरों में बिहार के दो, राजस्थान के दो, उत्तर प्रदेश के दो, असम का एक, हरियाणा का एक, हिमाचल प्रदेश का एक और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली शामिल हैं। रोकथाम के तमाम प्रयासों के बाद भी राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के 5 शहर सर्वोच्च-10 प्रदूषित शहरों में शामिल हैं।

शुद्ध वायु प्रकृति का वरदान है जिसमें हम श्वांस लेते हैं। यदि वह प्रदूषणमुक्त है, तो हम जीवनभर स्वस्थ और निरोगी रहते हैं। लेकिन यदि वह प्रदूषित है तो जानलेवा साबित हो सकती है। जी हां, प्रदूषित वायु समस्त बीमारियों की जड़ है।

राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली को देश के 255 शहरों में सर्वाधिक प्रदूषित माना गया है। दूसरे नम्बर पर देश का सर्वाधिक प्रदूषित शहर बिहार का भागलपुर रहा। जनवरी, 2024 में प्रदूषण को लेकर ऊर्जा एवं स्वच्छ वायु अनुसंधान केन्द्र (CREA) द्वारा जारी रिपोर्ट में इसका खुलासा हुआ है। इसके अनुसार, देश के 10 प्रदूषित शहरों में बिहार के दो, राजस्थान के दो, उत्तर प्रदेश के दो, असम का एक, हरियाणा का एक, हिमाचल प्रदेश का एक और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली शामिल हैं। रोकथाम के तमाम प्रयासों के बाद भी राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के 5 शहर सर्वोच्च-10 प्रदूषित शहरों में शामिल हैं।

इन शहरों में प्रदूषण के स्तर का आंकलन जनवरी 2019 में घोषित राष्ट्रीय स्वच्छ वायु कार्यक्रम के अंतर्गत किया गया। इसका उद्देश्य देश के 131 शहरों में वायु प्रदूषण के स्तर को कम करना है। जिसके अन्तर्गत भारत के 271 शहरों में 539 वायु गुणवत्ता प्रबोधन केन्द्र (AQMS) स्थापित किये गए। इनमें से मात्र 255 शहरों के लिए ही जनवरी माह के 80% दिनों के वायु गुणवत्ता आंकड़े उपलब्ध थे। जबकि 11 शहरों के लिए तो 20 से भी कम दिनों के आंकड़े उपलब्ध थे। वर्ष 2024 के लिए देश के 10 सबसे अधिक प्रदूषित शहरों में दिल्ली, भागलपुर (बिहार), सहरसा (बिहार), बनींहाट (असम), ग्रेटर नोएडा (उत्तर प्रदेश), हनुमानगढ़ (राजस्थान), नोएडा (उत्तर प्रदेश), बद्दी (हिमाचल प्रदेश), श्रीगंगानगर (राजस्थान), और फरीदाबाद (हरियाणा) प्रमुख हैं जबकि विगत वर्ष में पांच सबसे प्रदूषित शहरः बेगूसराय, दिल्ली, सहरसा, कटिहार एवं पटना पाये गये थे।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने पीएम 2.5 के लिए पांच माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर (वार्षिक औसत) का मानक तय किया है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, इससे ज्यादा प्रदूषित वायु में सांस लेने से बीमारियों का खतरा बढ़ सकता है। इस लिहाज से देखें, तो दुनिया के केवल 0.18% भाग में वायु गुणवत्ता का स्तर इससे बेहतर है। वहीं भारत में दैनिक राष्ट्रीय वायु गुणवत्ता मानक स्तर 60 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर निर्धारित किया गया है। गौरतलब है कि प्रदूषण के अत्यधिक महीन कणों को ''पीएम 2.5'' कहा जाता है, जिनका व्यास सामान्यतः 2.5 माइक्रोमीटर या उससे छोटा होता है।

रिपोर्ट के अनुसार, उत्तर भारत में वायु की कम गति और अपेक्षाकृत ठंडे उत्तर भारत में एक स्थिर वायुमंडल की दशाओं का विकास हुआ। जिसके कारण पृथ्वी की सतह के पास प्रदूषण उत्पन्न करने वाले कण अधिक मात्रा में बने रहे। इस दौरान वायु का प्रसार नहीं हो सकने के कारण इन इलाकों में प्रदूषण बढ़ गया।

देश के प्रमुख शहर प्रदूषण कम करने के अपने लक्ष्य से पीछे हैं। रेस्पायरर लिविंग साइंसेज ने देश के प्रमुख 49 शहरों के लिए 5 वर्षों के प्रदूषण आंकड़ों का विश्लेषण किया। इस अध्ययन के अनुसार, इस वर्ष दिल्ली, पटना, आगरा, समेत 27 शहरों के पीएम 2.5 स्तर में गिरावट देखी गई। वहीं, कुछ शहरों में वायु प्रदूषण तेजी से बढ़ा है। नवी मुंबई में सबसे जयादा 46%, मुंबई में 38.1% और उज्जैन में 46% की बढ़ोतरी देखी गई है। पीएम 2.5 में 5.9% गिरावट के पश्चात भी 2023 में दिल्ली देश का सबसे प्रदूषित

शहर रहा। केन्द्र ने 2019 में राष्ट्रीय स्वच्छ वायु कार्यक्रम के तहत पांच वर्ष में देश के 131 शहरों में वायु प्रदूषण में 20-40% कटौती का लक्ष्य रखा था। इसके लिए 96 अरब करोड़ का बजट रखा गया था। बाद में इस लक्ष्य की अन्तिम समय सीमा 2026 तक बढ़ा दी गई और पीएम 2.5 में कटौती लक्ष्य 40% कर दिया।

देश के 6 शहरों के पीएम 2.5 के स्तर में 40% कटौती देखी गई है। इन शहरों में वायु प्रदूषण स्तर में सुधार हुआ है। इनमें उत्तर प्रदेश के पांच शहरों वाराणसी में 72%, आगरा में 53%, कानपुर में 50%, मेरठ में 42% और लखनऊ में 41% की गिरावट आई। जोधपुर में 50% प्रतिशत की गिरावट देखी गई है।

प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के अनुसार वायु सूचकांक (AQI) 60 से कम स्वास्थ्य के लिए उपयुक्त, 100 से अधिक स्वास्थ्य के लिए अनुपयुक्त और 300 से अधिक स्वास्थ्य के लिए खतरनाक माना गया है। लेकिन सामान्यतः सभी महानगरों का प्रदूषण इससे अधिक ही होता है। कुछ जगहों पर तो प्रदूषण स्तर खतरनाक स्तर पर पहुंच जाता है।

2.5 माइक्रोमीटर आकार के बारीक कण मानव शरीर के लिए सबसे अधिक हानिकारक होते हैं। हर सांस के साथ ये सूक्ष्म कण शरीर के अंदर प्रवेश कर जाते हैं, जो मानव शरीर के श्वसन तंत्र, हृदय प्रणाली और मस्तिष्क को नुकसान पहुंचा सकते हैं। इनके संपर्क में आने से मनुष्यों में हृदय रोग, फेफड़े की बीमारी, निमोनिया और कैंसर जैसी घातक बीमारियां पैदा हो सकती हैं।

दिल्ली सहित अन्य महानगरों में वायु दमघोटू है। वाहनों के डीजल-पेट्रोल से निकलता धुंआ, लोगों के स्वास्थ्य के लिए सबसे अधिक हानिकारक है। बढ़ती आबादी के साथ-साथ देश में दोपहिया और चार पहिया वाहनों की संख्या में निरंतर वृद्धि होती जा रही है।

वायु प्रदूषण के कारण

- यद्यपि उद्योगों को विकास का सूचक माना जाता है, लेकिन यह उसका एक पक्ष है। कारखानों की धुंआ उगलती चिमनियां कितना प्रदूषण फैलाती हैं, बताने की आवश्यकता नहीं है। उद्योगों में कार्यरत कर्मचारियों और निकटवर्ती निवासियों का सांस लेना दूभर हो जाता है।
- दीपावली जैसे पर्व पर देश भर में जमकर आतिशबाजी की जाती है। सारा पर्यावरण धुएं और पटाखों की गंध से प्रदूषित हो जाता है। इससे लोगों को श्वांस लेने में तकलीफ होती है। लेकिन पटाखे छोड़ने वाले इसके बगैर जश्न अधूरा मानते हैं। दीपावली के अतिरिक्त अन्य अवसरों पर जैसे विजय जुलूस, बारात की निकासी आदि के दौरान भी जमकर पटाखे चलाए जाते हैं, जो कि वायु को प्रदूषित करते हैं।
- धूम्रपान एक व्यक्तिगत शौक भले ही हो, लेकिन सार्वजनिक स्थानों पर जब लोग बीड़ी-सिगरेट का धुंआ उड़ाते हैं, तो जनमानस को परेशानी का सामना करना पड़ता है। ट्रेन, बस आदि में महिलाओं विशिष्टतः गर्भवती महिलाओं को इसका धुंआ बर्दाश्त नहीं होता। हालांकि सार्वजनिक स्थानों पर धूम्रपान करना वर्जित है, लेकिन इसकी परवाह कौन करता है?
- किसान अपने खेत में पराली जलाते हैं, जिससे वायु प्रदूषित हो जाती है। इससे व्यापक क्षेत्र प्रभावित होता है। इसके अतिरिक्त जलने वाले ईंधन से चालित होने वाले उपकरण जेसेः लकड़ी का चूल्हा, गैस, भट्टियां, आदि भी वायु प्रदूषण कारकों में शामिल हैं। विध्वंसक गतिविधियां, कचरा जलाना, जंगल में लगी आग आदि भी वायु को प्रदूषित करते हैं। कच्ची सड़कें, तेल रिफाइनरियां भी वायु को प्रदूषित करती हैं।
- वायु प्रदूषण के कारकों में धूल, गंदगी, कालिख, गैसें भी शामिल हैं। प्राकृतिक रूप से वायु में कई गैसें होती हैं, लेकिन जब ये गैसें सीमा से अधिक हो जाती हैं, तो घातक हो जाती हैं। इसमें नाइट्रोजन डाईऑक्साइड, सल्फर डाईऑक्साइड, कार्बन डाईऑक्साइड, कार्बन मोनो ऑक्साइड तथा मिथेन आदि मुख्य हानिकारक गैसें हैं।

वायु प्रदूषण का मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव

नवजात, वृद्ध और बीमार व्यक्तियों को यदि स्वच्छ वायु न मिले, तो वे बीमार पड़ जाते हैं या उनकी तकलीफ बढ़ जाती है। खासतौर पर अस्थमा, निमोनिया के रोगियों के लिए प्रदूषित वायु घातक सिद्ध हो सकती है। वायु प्रदूषण से अस्थमा के रोगियों को दौरा पड़ सकता है। वायु प्रदूषण फेफड़ों के कैंसर का कारण भी बन सकता है। वायु प्रदूषण से खांसी और सांस लेने में कठिनाई होना तो आम बात है।

देश में बढ़ता वायु प्रदूषण।

वर्तमान समय में शहरों में रहने वाले व्यक्ति वायु प्रदूषण से दो चार होते रहते हैं। यह हमारे स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचा सकता है। एक शोध में सामने आया है कि इससे बच्चों में अस्थमा के अटैक बढ़ सकते हैं। यह शोध Lancet Planetary हेल्थ जर्नल में प्रकाशित किया गया है। अमेरिका के राष्ट्रीय स्वास्थ्य संस्थान के कार्यकारी निदेशक डॉ. ह्यूग औचिनक्लास के अनुसार, यह अध्ययन शहर में रहने वाले बच्चों पर वायु प्रदूषकों और गैर-वायरल अस्थमा के हमलों के प्रभावों को दर्शाता है।

यह अध्ययन इस तथ्य को सुनिश्चित करता है कि वायु प्रदूषण को कम करने से मानव स्वास्थ्य में सुधार होगा । यह पहली बार है कि विशिष्ट शहरी स्थानों में अस्थमा से होने वाले जोखिम का अध्ययन किया गया है। अस्थमा दौरे के दौरान श्वसन तंत्र की पर्त सूज जाती है, क्योंकि श्वसन तंत्र के आसपास की मांसपेशियां सिकुड़ जाती हैं और बलगम उसके मार्ग में एकत्रित हो जाता है। जो श्वसन तंत्र के उस स्थान को काफी हद तक संकीर्ण कर देता है, जिसके माध्यम से वायु फेफड़ों के अंदर और बाहर जाती है। शहरी क्षेत्रों में बच्चों को अस्थमा के दौरे का विशेष रूप से अधिक खतरा होता है। अध्ययन में अस्थमा से पीड़ित छह से 17 वर्ष की आयु के 208 बच्चों को शामिल किया गया। अध्ययन दल ने दैनिक वायु गुणवत्ता के प्रभाव की तुलना बच्चों में अस्थमा अटैक की रिपोर्ट से की। उन्होंने यह सुनिश्चित करने के लिए भी आवश्यक जांच की कि बच्चे किसी सांस संबंधी वायरल रोग से पीड़ित तो नहीं है, जो अस्थमा को बढ़ावा दे सके।

बढ़ता निर्माण कार्य तथा वाहनों से निकलता धुआं प्रदूषण वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ठंड बढ़ते ही यह स्थिति और खराब हो जाती है। एक शोध में सामने आया है कि प्रदूषित वायु में पांच दिन भी अगर कोई रहता है, तो उसमें स्ट्रोक का खतरा बढ़ जाता है। यह शोध हाल ही में ''जर्नल ऑफ न्यूरोलॉजी'' में प्रकाशित किया गया है।

घरेलू स्रोतों से बढ़ता वायु प्रदूषण।

इसमें कहा गया है कि स्ट्रोक से मस्तिष्क को नुकसान, दीर्घकालिक विकलांगता और मनुष्य की मौत तक हो सकती है। स्ट्रोक के लक्षण हल्की कमजोरी से लेकर चेहरे या शरीर के एक तरफ पक्षाघात या सुन्नता तक हो सकते हैं। अम्मान में जार्डन विश्वविद्यालय के अध्ययन लेखक अहमद तौबासी के अनुसार, पिछले शोध में दीर्घावधि के लिए वायु प्रदूषण से संपर्क और स्ट्रोक के बीच संबंध कम स्पष्ट पाये गये थे। अतः वर्तमान अध्ययन के लिए हफ्तों या महीनों के बजाय हमने केवल पांच दिनों की समयावधि का चयन किया इसमें वायु प्रदूषण के अल्पकालिक जोखिम और स्ट्रोक के बढ़ते जोखिम के बीच हमें एक संबंध देखने को मिला।

विश्लेषण में 110 अध्ययनों की समीक्षा शामिल की गई, जिसमें स्ट्रोक के 1.8 करोड़ से अधिक मामले शामिल थे। शोधकर्ताओं ने नाइट्रोजन डाई ऑक्साइड, ओजोन, कार्बन मोनोआक्साइड और सल्फर डाई ऑक्साइड जैसे प्रदूषकों के प्रभाव का इस अवधि के दौरान अध्ययन किया। उन्होंने पीएम 2.5 कणों को भी अध्ययन में शामिल किया।

वायु प्रदूषण का कार्य क्षमता पर असर

किसी भी कार्यालय में कार्य करने के लिए वहां का वातावरण बहुत महत्वपूर्ण होता है। इसका उनके काम पर प्रभाव पाया जाता है। एक नए अध्ययन में पाया गया है कि कार्यालय के अंदर वायु प्रदूषण वहां काम करने वालों की रचनात्मक क्षमता पर नकारात्मक प्रभाव डालता है। शोधकर्ताओं का यह निष्कर्ष 'साइंटिफिक रिपोर्ट जर्नल' में प्रकाशित हुआ है। सिंगापुर के नानयांग प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय (NTU) के शोधकर्ताओं ने पाया कि अध्ययन के लिए चुने गए 87 स्नातक व स्नातकोत्तर प्रतिभागियों का उस समय रचनात्मक आउटपुट कम रहा, जब कमरे के अंदर वाष्पशील कॉर्बनिक यौगिकों का स्तर उच्च था, जिसमें डिटर्जेंट, इत्र व पेंट से निकलने वाली गैसें शामिल थीं। उन्होंने पाया कि वाष्पशील कॉर्बनिक यौगिकों के स्तर में 72 प्रतिशत की कमी होने पर कार्मिकों की रचनात्मक क्षमता 12 प्रतिशत सुधर गई। यह उन उद्योगों के लिए चेतावनी है जो बड़ी मात्रा में इन कार्बनिक यौगिकों का उपयोग करते हैं। नानयांग प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के प्रमुख शोधकर्ता वान मैन पुन के अनुसार, पेंट और थिनर का प्रयोग करने वाले बहुत से उद्योगों को इसकी जानकारी नहीं होती कि उन्हें कार्यस्थल पर पर्याप्त वैंटिलेशन की जरूरत होती है। पर्याप्त वैंटिलेशन न होने के कारण उनके कर्मचारियों की कार्य क्षमता पर प्रभाव पड़ता है। शोधकर्ताओं ने अध्ययन के लिए छह सप्ताह 40 मिनट के तीन से अधिक सत्र आयोजित किये। इन सत्रों में प्रतिभागियों को जलवायु परिवर्तन, मानसिक स्वास्थ्य और गरीबी जैसे वैश्विक समस्याओं पर जानकारी दी गई। इसके बाद उनसे LEGOs ब्रिक्स पर आधारित थ्रीडी मॉडल पेश करने को कहा गया। प्रतिभागियों से उनके मॉडल के बारे में विस्तृत जानकारी देने को भी कहा गया। इस दौरान कमरे में वायु गुणवत्ता की स्थिति में निरन्तर बदलाव किया जाता रहा। शोधकर्ताओं ने पाया कि वाष्पशील कार्बनिक यौगिकों के स्तर में 72 प्रतिशत की कमी होने पर तो उनकी रचनात्मक क्षमता में 12 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई।

वायु प्रदूषण से दिल की बीमारी

एक ताजा अध्ययन में बताया गया है कि दीर्घावधि तक वायु प्रदूषण के सम्पर्क में रहने से दिल की अनियमित धड़कन का जोखिम बढ़ जाता है। शोधकर्ताओं के अनुसार, वैसे तो वायु प्रदूषण दिल की बीमारियों का एक प्रमुख कारक है, परन्तु आज यह दिल की खतरनाक बीमारी के जोखिम में वृद्धि करने वाला प्रमुख कारण माना जा रहा है। चीन के शोधकर्ताओं ने अध्ययन के लिए 322 शहरों के 2025 अस्पतालों के आंकड़े एकत्र कर उनका विश्लेषण किया। शोध से जुड़े शंघाई के फूदान विश्वविद्यालय के प्रोफेसर रेनजी चेन कहते हैं कि हमने विश्लेषण में वायु प्रदूषण और अर्थीमिया के जोखिम के बीच संबंध पाया। शोधकर्ताओं के अनुसार, छह प्रदूषण कारकों में नाइट्रोजन डाई ऑक्साइड, अर्थीमिया के सभी चार प्रकारों में सबसे मजबूती के साथ सम्बद्ध था। हालांकि अभी वायु प्रदूषण और अर्थीमिया के जोखिम के बीच का सटीक तंत्र पूर्णतः नहीं समझा जा सका है। लेकिन इनके मध्य जो संबंध पाया गया है, वह प्रशंसनीय है।

दिल की धड़कन में असमानता की स्थिति में एट्रियल फाइब्रिलेश और एट्रियल फ्लटर विश्व के लगभग 5.97 करोड़ लोगों को प्रभावित करती है। दिल की धड़कन में असमानता में वृद्धि गंभीर हृदय रोग के लिए एक परिवर्तनीय जोखिम कारक है। अध्ययन में यह बात सामने आई है कि लंबे समय तक वायु प्रदूषण के सम्पर्क में रहने से अनियमित दिल की धड़कन का जोखिम बढ़ जाता है।

शोधकर्ताओं ने 2025 अस्पतालों के आंकड़ों का प्रयोग कर वायु प्रदूषण के प्रति घंटे के सम्पर्क और एरिथेमिया के लक्षणों की अचानक शुरूआत का मूल्यांकन किया। शोधकर्ताओं ने रिपोर्टिंग अस्पतालों के निकटतम प्रबोधन स्टेशनों से वायु प्रदूषक सांद्रता का प्रयोग कर विश्लेषण किया। शंघाई के फूडान विश्वविद्यालय के डॉ. रेन्जी चेन ने कहा कि हमने पाया कि परिवेशी वायु प्रदूषण का गहन सम्पर्क एरिथेमिया के बढ़े जोखिम से सम्बद्ध है, जिसके लक्षण नजर आते हैं। जोखिम शुरूआती कुछ घंटों में प्रदूषण के सम्पर्क में आने पर नजर आया और इसका प्रभाव 24 घंटे तक बना रह सकता है। यह अध्ययन 190115 रोगियों पर किया गया, जिनमें एट्रियल फाइब्रिलेशन, एट्रियल फ्लटर के समय से पहले धड़कन और सुप्रावेंट्रिकूलर टैचीकार्डिया सहित लक्षण संबंधी एरिथेमिया की तीव्र शुरूआत थी। 6 प्रदूषकों में नाइट्रोजन डाई ऑक्साइड का सभी 4 प्रकार के एरिथेमिया के साथ सबसे मजबूत संबंध पाया गया।

वायु प्रदूषण से सांस की तकलीफ, घबराहट, खांसी, अस्थमा और सीने में दर्द होता है। बेशक, सबसे बड़ा जोखिम फेफड़ों से जुड़ा है, लेकिन वायु प्रदूषण का असर दिल पर भी पड़ता है।

नवजात, वृद्ध और बीमार व्यक्तियों को यदि स्वच्छ वायु न मिले, तो वे बीमार पड़ जाते हैं या उनकी तकलीफ बढ़ जाती है। खासतौर पर अस्थमा, निमोनिया के रोगियों के लिए प्रदूषित वायु घातक सिद्ध हो सकती है। वायु प्रदूषण से अस्थमा के रोगियों को दौरा पड़ सकता है। वायु प्रदूषण फेफड़ों के कैंसर का कारण भी बन सकता है। वायु प्रदूषण से खांसी और सांस लेने में कठिनाई होना तो आम बात है।

संयुक्त राष्ट्र की एजेंसी की ओर से जारी रिपोर्ट में कहा गया है कि कम और मध्यम आय वाले देशों में समय पूर्व पैदा हुए बच्चों में से 91 प्रतिशत की मौत का कारण वायु प्रदूषण है।

बच्चों की बौद्धिक क्षमता प्रभावित

शोर, प्रदूषण, भीड़भाड़ और घनी आबादी शहरों की खासियत है। ऐसे माहौल में जन्म से पांच साल तक की उम्र तक पलने वाले बच्चों के शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य पर गहरा असर पड़ता है। नतीजा यह होता है कि ऐसे बच्चों का समुचित विकास नहीं हो पाता है। ऐसे बच्चे आगे चलकर गांव में पलने वाले बच्चों की अपेक्षा प्रतिस्पर्धा के हर क्षेत्र में पिछड़ सकते हैं। यह जानकारी ऑस्ट्रेलिया के सिडनी में प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के नेतृत्व में किये गये एक अध्ययन के परिणामों में दी गई है। यह अध्ययन 41 देशों में 235 अनुसंधानों के विश्लेषण पर आधारित है। पब्लिक हेल्थ शोध एंड प्रैक्टिस जर्नल में प्रकाशित रिसर्च में बचपन में विकास को प्रभावित करने वाले पर्यावरण जोखिम के ऐसे पहलुओं को बताया गया है, जो किसी बच्चे के जन्म से 5 वर्ष तक उसके जीवन पर पड़ता है। इनके प्रभाव का असर उनके बाद के जीवन में शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक और भावनात्मक स्वास्थ्य पर प्रभाव डालता है। अनुसंधान की प्रमुख एरिका मैकइंटायर ने कहा है कि बच्चों के विकास को प्रभावित करने वाले मुख्य कारणों में ध्वनि, वायु और जल प्रदूषण, रासायनिक प्रभाव के साथ ही पड़ोस की विशेषताएं, सामाजिक सहयोग और आवासीय स्थिति शामिल हैं। अध्ययन में शहरी जीवन की जिन चिंताओं की सबसे अधिक जांच की गई, उनमें एक वायु प्रदूषण थी। मैकइंटायर ने कहा कि वायु प्रदूषण से मस्तिष्क विकास पर दीर्घकालिक असर पड़ता है। पार्कों, बगीचों और खुले प्राकृतिक परिवेश नहीं मिलने से शहरी बच्चे अनुभवजन्य ज्ञान नहीं प्राप्त कर पाते हैं। गांव में पले बच्चों की तुलना में शहरी बच्चे कठिन प्रतिस्पर्धा में मानसिक रूप से ज्यादा परेशानी महसूस करते हैं।

अध्ययन के परिणामों ने शहरी डिजाइनर के पहलुओं की बेहतर आवश्यकता पर भी प्रकाश डाला। उदाहरणार्थः हरे भरे पार्क, बगीचे आदि विकसित करके बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य में वृद्धि की जा सकती है। मैकइंटायर के अनुसार, शहरों के विकास में बच्चों के अनुकूल डिजाइनों को शामिल करना चाहिए।

एक नए शोध में दावा किया गया है कि बच्चों के प्रारम्भिक विकास पर प्रदूषित पर्यावरण का तेजी से नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। ऑस्ट्रेलियाई शोधकर्ताओं ने बच्चों के विकास के लिए प्रारम्भिक दो हजार दिवसों (करीब पांच वर्ष) को एक महत्वपूर्ण अवधि के रूप में पहचान दी है। उनके अनुसार, यह अवधि बच्चों के शारीरिक, संज्ञानात्मक, सामाजिक और भावनात्मक विकास की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है। लेकिन शहरों में सीमित हो रहे हरियाली पूर्ण क्षेत्र, वायु व ध्वनि प्रदूषण, उनके विकास को बाधित कर रहे हैं। इससे बच्चों में अस्थमा जैसी श्वसन समस्याओं का जोखिम तेजी से बढ़ा है। ऑस्ट्रेलिया में प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय सिडनी के शोधकर्ताओं ने यह शोध पब्लिक हेल्थ रिसर्च एंड प्रैक्टिस जर्नल में हाल ही में प्रकाशित किया है। शोध दल ने बच्चों के विकास में वातावरण, विभिन्न रसायन व धातु की उपलब्धता, सामुदायिक समर्थन व आवासीय पर्यावरण की विशिष्ट भूमिका पर प्रकाश डाला। अध्ययन से शहरों में स्वास्थ्य जोखिम को समझने में सहायता मिलेगी तथा इसके अनुसार, पर्यावरण सुधार की रूपरेखा बनाई जा सकेगी। एक आंकलन के अनुसार, 2030 तक 60% आबादी शहरों में निवास कर रही होगी। अध्ययन की प्रमुख लेखिका सिडनी के प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय की इरिका मैकलिनटायर के अनुसार, शहरी योजनाकार और नीति निर्माताओं को अपनी भूमिका निर्धारित करनी होगी, जिससे बच्चों के स्वास्थ्य जोखिम को कम किया जा सके।

विभिन्न कारकों द्वारा बढ़ता वायु प्रदूषण।

शोध की लेखिका एरिना के अनुसार, शहरी जीवन में बच्चों के लिए सबसे बड़ा जोखिम कारक वायु प्रदूषण है। यह उनके मस्तिष्क विकास पर प्रभाव डालता हैं, साथ ही अस्थमा जैसी श्वसन समस्याओं को जन्म देता है।

वायु गुणवत्ता सूचकांक और उनके मानक स्तरों का स्वास्थ्य पर प्रभाव

वायु गुणवत्ता सूचकांक सरकारी संस्थानों द्वारा जनमानस को यह बताने के लिए विकसित किया गया एक संकेतक है कि वर्तमान में वायु कितनी प्रदूषित है, इसे AQI भी कहते हैं। 0 से 500 तक के पैमाने पर AQI मान जितना अधिक होगा, वायु प्रदूषण का स्तर भी उतना ही अधिक होगा। उदाहरणार्थः 50 या उससे कम AQI मान अच्छी वायु गुणवत्ता को दर्शाता है, जबकि 300 से अधिक का AQI मान खतरनाक वायु गुणवत्ता को दर्शाता है।

वायु प्रदूषण की श्रेणियां-

01 से 50	संतोषप्रद, कोई खतरा नहीं।
51 से 100	स्वीकार्य, कम घातक।
101 से 150	अस्वास्थ्यप्रद, संवेदनशील लोगों के लिए खतरनाक।
151 से 200	सभी के लिए घातक,
201 से 300	अत्यधिक अस्वास्थ्यप्रद, खतरे की घंटी।
301 से 500	अत्यन्त घातक, आपातकालीन स्थिति।

वायु गुणवत्ता सूचकांक का उपयोग करके वायु गुणवत्ता की रिपोर्ट तैयार की जाती है। इन सभी 6 श्रेणियों को विभिन्न रंगों का उपयोग करके स्वास्थ्य संबंधी चिंता के स्तर को दर्शाया जाता है। कोड ग्रीन और येलो का अर्थ है कि वायु आमतौर पर सभी के लिए सुरक्षित है। कोड औरेंज संवेदनशील समूहों के लिए हानिकारक है, जिसमें बच्चे, बूढ़े और हृदय तथा फेफड़ों की बीमारी से प्रभावित लोग शामिल हैं। कोड रेड और पीले का अर्थ है कि हवा सभी के लिए हानिकारक है। कोड मैरून का अर्थ है आपातकालीन स्थितियों की स्वास्थ्य के लिए चेतावनी।

सभी तरह के प्रदूषण पृथ्वी, पर्यावरण और जीवन के लिए हानिकारक हैं, लेकिन वायु प्रदूषण सर्वाधिक घातक है। यूनिसेफ व स्वास्थ्य प्रभाव संस्थान की रिपोर्ट 'स्टेट ऑफ ग्लोबल एयर 2024' ने इसे सिद्ध साबित कर दिया है।

ध्यान देने योग्य विषय है कि रिपोर्ट में वर्ष 2021 के आंकड़ों को अध्ययन हेतु लिया गया है, जिस वर्ष कोविड-19 के चलते रेल, सड़क और वायु यातायात अपेक्षाकृत कम था। रिपोर्ट कहती है कि वर्ष 2021 में वायु प्रदूषण से विश्व में 81 लाख मौतें हुईं। इनमें से आधी मौतें चीन और भारत में

हुई हैं। चीन में 23 लाख और भारत में 21 लाख लोगों की जान गई। वायु प्रदूषण से जान गंवाने वाले पांच वर्ष की उम्र तक के बच्चों की संख्या भारत में सर्वाधिक थी। 2021 में इस आयु वर्ग के 1,69,400 बच्चों की मौत वायु प्रदूषण जनित बीमारियों से हुई, जो कुपोषण के बाद सबसे बड़ा कारण है। 200 से अधिक देशों से एकत्र आंकड़ों के आधार पर तैयार रिपोर्ट में बताया गया है कि मौतों का सबसे बड़ा कारण मुख्यतः वायु प्रदूषण है, इसके बाद अन्य कारणों में उच्च रक्तचाप व तंबाकू का सेवन है।

औद्योगिक स्रोतों से बढ़ता वायु प्रदूषण।

वायु प्रदूषकों के प्रकार और उनकी उत्पत्ति

- जमीनी स्तर ओजोन
- कण प्रदूषण (जिसमें पीएम 2.5 और पीएम 10 शामिल है)
- कार्बन मोनोऑक्साइड
- सल्फर डाईऑक्साइड
- नाइट्रोजन डाईऑक्साइड

गैसों के लिए जिम्मेदार वायु प्रदूषण में सबसे बड़े प्रदूषक, परिवहन, घर और जंगल की आग तथा उद्योगों आदि में जीवाश्म ईंधन और बायोमास को जलाने से पैदा होते हैं।

वायु प्रदूषकों की उत्पत्ति कई कारणों से होती है, जैसे कार का धुआं, कारखाने की चिमनी से निकलने वाला धुआं आदि। कण प्रदूषण और गैसें सीधे इन स्त्रोतों से आती हैं, किन्तु वायु में अन्य रासायनिक प्रतिक्रियाओं के माध्यम से बनती हैं। एरोसोल अन्य स्थानों जैसे कि ज्वालामुखी के फटने से निकलती राख आदि से भी प्राप्त हो सकते हैं। यद्यपि वायु प्रदूषण के कई स्त्रोत हैं, तथापि बड़े प्रदूषकों में वाहन उत्सर्जन, स्थिर विद्युत उत्पादन, औद्योगिक तथा कृषि उत्सर्जन, आवासीय हीटिंग और खाना पकाना, रसायनों का निर्माण, वितरण और उपयोग मुख्य हैं।

रिपोर्ट कहती है कि वायु प्रदूषण जनित बीमारियों से भारत में हर घंटे औसतन 240 लोगों की जान जाती है। जबकि 20 बच्चों की मौत होती है।

दुनिया में होने वाली कुल मौतों में 12 प्रतिशत मौतें पीएम 2.5 (हवा में घुले महीन कण), ओजोन (O_3) और नाइट्रोजन डाईऑक्साइड (NO_2) जैसे प्रदूषकों के कारण होती हैं।

वायु प्रदूषण से होने वाली वैश्विक मौतों में 78 लाख (90%) से ज्यादा का कारण पीएम 2.5 वायु प्रदूषण है। यह प्रदूषण ग्रीन हाउस गैसों का हिस्सा भी बनते हैं, जो धरती को गर्म करने में योगदान दे रहे हैं।

ग्रीन पीस इंडिया की रिपोर्ट के अनुसार भारत के 99% से ज्यादा लोग प्रदूषित वायु में सांस ले रहे हैं। रिपोर्ट के मुताबिक, विश्व स्वास्थ्य संगठन ने पीएम 2.5 को लेकर जो मानक बनाया है, भारत की वायु उससे 5 गुणा ज्यादा प्रदूषित है।

ऐसे सूक्ष्म कण, जिनका व्यास 2.5 माइक्रोमीटर से भी कम है, फेफड़ों में रह जाते हैं और रक्त प्रवाह के साथ शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। इससे कई अंग प्रणालियां प्रभावित होती हैं और हृदय रोग, स्ट्रोक, मधुमेह, फेफड़ों का कैंसर आदि विभिन्न बीमारियों का जोखिम बढ़ जाता है।

मानव स्वास्थ्य पर दीर्घकालिक और अल्पकालिक संपूरक

मानव स्वास्थ्य पर वायु प्रदूषण के दीर्घकालिक और अल्पकालिक दोनों तरह के प्रभाव पड़ते हैं। यदि कोई व्यक्ति लंबे समय तक प्रदूषित वायु के संपर्क में रहता है, तो उसका स्वास्थ्य धीरे-धीरे गिरता जाता है और वह गंभीर बीमारियों की चपेट में आ जाता है।

यदि व्यक्ति कुछ या थोड़े समय के लिए प्रदूषित वायु में रहता है, तो इससे उसका स्वास्थ्य प्रभावित तो होता है लेकिन उसमें सुधार होने की संभावना रहती है

वायु प्रदूषण का मानव शरीर के विभिन्न अंगों पर प्रभाव

वायु प्रदूषण का मानव के कई महत्वपूर्ण अंगों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। उनकी कार्य क्षमता प्रभावित होती है। विशिष्टतः ऐसे व्यक्तियों के लिए जो फेफड़ों की बीमारी या सांस संबंधी समस्याओं जैसे अस्थमा या दमा से पीड़ित हों।

विशेषज्ञों का मानना है कि वायु

वायु प्रदूषकों की उत्पत्ति कई कारणों से होती है, जैसे कार का धुआं, कारखाने की चिमनी से निकलने वाला धुआं आदि। कण प्रदूषण और गैसें सीधे इन स्त्रोतों से आती हैं, किन्तु वायु में अन्य रासायनिक प्रतिक्रियाओं के माध्यम से बनती हैं। एरोसोल अन्य स्थानों जैसे कि ज्वालामुखी के फटने से निकलती राख आदि से भी प्राप्त हो सकते हैं। यद्यपि वायु प्रदूषण के कई स्त्रोत हैं, तथापि बड़े प्रदूषकों में वाहन उत्सर्जन, स्थिर विद्युत उत्पादन, औद्योगिक तथा कृषि उत्सर्जन, आवासीय हीटिंग और खाना पकाना, रसायनों का निर्माण, वितरण और उपयोग मुख्य हैं।

वायु प्रदूषण विश्व भर में लोगों के स्वास्थ्य के लिए गंभीर पारिस्थितिक खतरा है। चौराहों पर लगे वायु प्रदूषण मापक हमें बताते रहते हैं कि आज शहर की वायु कैसी है। यदि यह सूचना पहले से ही मिल जाए, तो प्रदूषण के दुष्प्रभाव को कम करने या रोकने के लिए समय रहते उचित कदम उठाए जा सकते हैं। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI) और मशीन लर्निंग (ML) जैसी अत्याधुनिक तकनीकों से अब ऐसा संभव होगा। प्रयागराज स्थित मोतीलाल नेहरू राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान (MNNIT) के विज्ञानियों ने ऐसा मॉडल विकसित किया है जो मौसम की तरह ही वायु प्रदूषण का पूर्वानुमान बताने में भी सक्षम होगा।

प्रदूषण के कारण गर्भवती महिलाओं के गर्भ में भ्रूण के विकास में बाधा पहुंचती है। इससे ऑटिज्म, रेटिनोपैथी तथा जन्म के समय बच्चों में वजन कम होना शामिल है।

वायु प्रदूषण का हृदय पर कुप्रभाव पड़ता है। इससे हृदयघात का जोखिम भी बढ़ता है। वायु प्रदूषण के मध्य निवास करने वालों में पाचन संबंधी समस्याएं भी देखने को मिलती हैं। अनेक अध्ययनों से इस बात की पुष्टि हुई है कि वायु प्रदूषण का प्रजनन पर कुप्रभाव पड़ता है।

सच तो यह है कि वायु प्रदूषण शरीर की महत्वपूर्ण प्रणालियों और अंगों पर कुप्रभाव डालता है। इससे जीवन प्रत्याशा और जीवन की गुणवत्ता में कमी होती है।

निष्कर्ष

यद्यपि वायु प्रदूषण को रोकने के लिए कई कानून बने हुए हैं, लेकिन उनका सख्ती से पालन नहीं किया जा रहा है। इससे वे महज औपचारिक बनकर रह गए हैं। प्रदूषित वायु जनस्वास्थ्य के लिए तो घातक है ही, पशु-पक्षियों की सेहत को भी प्रभावित करती है। अतः जनसाधारण को इसके प्रति जागरूक होना होगा।

वायु को शुद्ध रखने में पेड़-पौधों की अहम भूमिका है। अतः उसके लिए वृक्षारोपण कार्यक्रम में भी तेजी लाना चाहिए।

वायु को प्रदूषित होने से बचाने के लिए डीजल-पेट्रोल से चलने वाले वाहनों के स्थान पर विद्युत चालित वाहनों का

दिल्ली में वायु प्रदूषण के कारण जनमानस में स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं।

अधिकाधिक प्रयोग करना चाहिए। इसके लिए चार्जिंग स्टेशनों की समुचित व्यवस्था करनी होगी। इसके अलावा, सीएनजी भी एक अन्य विकल्प है। कम दूरी के लिए जनमानस को पैदल या साइकिल के लिए प्रेरित करना होगा।

वायु प्रदूषण को गंभीरता से लेना चाहिए। इस दिशा में सरकार को सख्त कदम उठाने होंगे तथा इंसान की सेहत को सर्वोपरि मानना होगा।

वायु प्रदूषण विश्व भर में लोगों के स्वास्थ्य के लिए गंभीर पारिस्थितिक खतरा है। चौराहों पर लगे वायु प्रदूषण मापक हमें बताते रहते हैं कि आज शहर की वायु कैसी है। यदि यह सूचना पहले से ही मिल जाए, तो प्रदूषण के दुष्प्रभाव को कम करने या रोकने के लिए समय रहते उचित कदम उठाए जा सकते हैं। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI) और मशीन लर्निंग (ML) जैसी अत्याधुनिक तकनीकों से अब ऐसा संभव होगा। प्रयागराज स्थित मोतीलाल नेहरू राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान (MNNIT) के विज्ञानियों ने ऐसा मॉडल विकसित किया है जो मौसम की तरह ही वायु प्रदूषण का पूर्वानुमान बताने में भी सक्षम होगा।

विज्ञानियों ने AI और ML प्रमेय के प्रयोग से कृत्रिम तंत्रिका आधारित नेटवर्क (ANN) और लांग शार्ट टर्म मेमोरी (LSTM) मॉडल विकसित किया है। यह वायु की गति, तापमान और आर्द्रता के आधार पर वायु गुणवत्ता सूचकांक (AQI) का पूर्वानुमान लगा सकता है। यह शोध अंतर्राष्ट्रीय जर्नल 'केमिकल प्रोडक्शन केमिकल माडलिंग' में प्रकाशित हो चुका है।

मौसम की बदलती परिस्थितियों के अनुसार AQI की भविष्यवाणी करना चुनौतीपूर्ण है। इसी का समाधान खोजते हुए MNNIT में अनुप्रयुक्त यांत्रिकी विभाग के सहायक प्रोफेसर डॉ. अनुभव रावत के साथ विज्ञानियों के दल ने AQI का पूर्वानुमान लगाने वाला मॉडल तैयार किया है। इसे तैयार करने के लिए केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड से पिछले पांच वर्ष के आंकड़े लिये गये। इसके प्रयोग से ANN और LSTM मॉडल ने बेहतर परिणाम दिए। विज्ञानियों का कहना है कि इस मॉडल को जितनी अधिक अवधि के आंकड़े उपलब्ध कराये जाऐंगे, परिणाम उतने ही उपयुक्त होंगे।

वायु प्रदूषण के पूर्वानुमान के लिए प्रशासन के स्तर पर समय रहते इसके कारकों को रोकने का प्रयास किया जा सकेगा, ताकि प्रदूषण न हो या कम से कम हो।

संपर्क करें:
डॉ. विनोद गुप्ता
43/2, सुदामानगर, रामटेकरी,
मन्दसौर (म.प्र.) 458001
मोबाइल - 9826042811
ईमेलः
anucomputer@rediffmail.com

डॉ. राजेश कुमार गोयल, डॉ. महेश कुमार गौड़ एवं डॉ. महेश्वर सिंह कंवर

जलवायु परिवर्तन के परिदृश्य में लद्दाख में गहराता जल संकट

लेह के वर्तमान जलसंकट का मुख्य कारण लद्दाख में तीव्र पर्यटन विकास के अन्तर्गत होटल, अतिथिगृह और सड़कों के निर्माण सहित क्षेत्र का चहुंमुखी विकास है। पर्यटन के अप्रतिबंधित प्रवाह ने स्थानीय पारिस्थितिकी तंत्र पर बहुत अधिक दबाव डाला है। सरकारी रिकॉर्ड के अनुसार, 1974 में जब लद्दाख को पहली बार पर्यटन के लिए खोला गया था, तब कुल घरेलू व विदेशी 527 पर्यटक यहाँ आये थे। अब लगभग 50 साल बाद, पर्यटकों की संख्या प्रति वर्ष लगभग 4.5 लाख हो गई है। बढ़ते हुए पर्यटन से जहां इस क्षेत्र में जल की मांग बढ़ी है, वहीं अपशिष्ट उत्पादन, विशेषकर प्लास्टिक की बोतलों का प्रयोग भी तेजी से बढ़ा है। होटल और रेस्तरां के निर्माण में तीव्र वृद्धि से क्षेत्र का प्राकृतिक परिदृश्य कम हो रहा है। पश्चिमी मानकों के अनुसार कई पर्यटक सुविधाओं के लिए बहुत अधिक जल संसाधनों की आवश्यकता होती है जो आमतौर पर स्थानीय समुदाय की आवश्यकता से कहीं अधिक है।

लद्दाख हिमालय के वृष्टि छाया भाग पर स्थित है जहाँ शुष्क मानसूनी हवाएं मैदानी क्षेत्रों और हिमालय पर्वत की आर्द्रता दूर करने के बाद लेह तक पहुँचती हैं। लद्दाख की जलवायु में आर्कटिक और रेगिस्तानी जलवायु दोनों का समावेश है। इसलिए लद्दाख को प्रायः ठंडा रेगिस्तान कहा जाता है। लद्दाख में वर्षा बहुत कम (10 सेमी) होती है तथा कम वर्षा भी मुख्यतः हिमपात के रूप में होती है। लद्दाख में लगभग 90 प्रतिशत किसान हिमगलन और हिमनदीय जल पर निर्भर हैं। इस क्षेत्र में बुआई अप्रैल से मई तक होती है और यदि बुआई के समय पर सिंचाई हेतु पर्याप्त जल प्राप्त न हो तो इसका फसल के विकास और उपज पर गंभीर प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त वर्तमान में जलवायु परिवर्तन के परिदृश्य अनियमित वर्षा का संकेत देते हैं। हाल के वर्षों में यहां हिमपात जमाव की मात्रा 3 फीट से घटकर 3 इंच रह गई है। अधिक ऊंचाई पर स्थितः हिमनद पीछे की ओर खिसक रहे हैं जिसके कारण ये जून के मध्य के आसपास पिघलना शुरू हो जाते हैं। परिणामस्वरूप, अप्रैल और जुलाई के महीनों के बीच यहाँ जल की कमी हो जाती है जो कृषि को बुरी तरह प्रभावित करती है। कम हिमपात व बढ़ते जल संकट ने लद्दाख के कई गांवों के निवासियों को नई आजीविका की तलाश के लिए विवश कर दिया है।

लद्दाख में रोजगार की उपलब्धता

- लद्दाख में लगभग 320 बादल रहित धूप वाले दिन होते हैं और औसत दैनिक वैश्विक सौर विकिरण लगभग 2022 kWh/मी²/वर्ष प्राप्त होता है। इसलिए, लद्दाख भारत में सौर ऊर्जा उत्पादन के लिए एक अनुकूल भू-भाग है।
- घाटी के भू-भाग की संरचना के कारण पवन संसाधनों की प्रचुरता, लद्दाख में पवन ऊर्जा के दोहन की संभावना प्रदान करती है।
- लद्दाख में सिंधु नदी और उसकी सहायक नदियों पर जल विद्युत उत्पादन की अपार संभावनाएं है।
- खुबानी, सेब और सी-बकथोर्न (Seabuckthorn) की सर्वोत्तम गुणवत्ता वाली प्रजातियों का यहाँ उत्पादन किया जाता है। खाद्य एवं प्रसंस्करण उद्योगों के विकास की भी यहाँ काफी संभावनाएं हैं।
- लद्दाख में दूध का लगभग 50% अधिशेष उत्पादन होता है, जिसमें

प्रसंस्करण करने, निर्यात करने और स्थानीय उत्पादकों के लिए राजस्व उत्पन्न करने की क्षमता है।

- विशाल हिमालय में स्थित अधिक ऊंचाई वाले ठंडे रेगिस्तान और सुरम्य स्थानों के साथ विविध स्थलाकृति इसे घरेलू और विदेशी पर्यटकों के लिये पसंदीदा स्थल बनाती है।

लद्दाख में कृषि उत्पादन के लिए चुनौतियाँ

- प्रतिकूल जलवायु और नाजुक प्राकृतिक संसाधन।
- फसल उत्पादन के लिए अत्यधिक संकीर्णता।
- सिंचाई के लिए हिमगलित जल पर पूर्ण निर्भरता।
- कम उत्पादकता वाली कृषि की पारंपरिक प्रणाली।
- जलवायु परिवर्तन के कारण हिमनद तेजी से पिघल रहे हैं, वर्षा और हिमपात कम हो रहा है।
- तापमान बढ़ने से नदियों में जल प्रवाह प्रभावित हो रहा है।
- स्थलाकृति ऊबड़-खाबड़, भू-भाग वाली है और कटाव की अत्यधिक संभावना है।
- पर्यटकों की बढ़ती संख्या के परिणामस्वरूप भोजन और अन्य आपूर्ति की बढ़ती मांग के कारण प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन किया जा रहा है।
- पशुओं के लिए चारे की कमी।

ठंडे शुष्क क्षेत्र की विशेष समस्याओं के समाधान के लिए वर्ष 2012 में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली ने जोधपुर स्थित केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान का एक क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, लेह में स्थापित किया। अपनी स्थापना के बाद से ही क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र-लेह, स्थानीय कृषि उपज प्रसंस्करण, पारंपरिक कृषि वानिकी प्रणाली, भूमि और जल संसाधन प्रबंधन, कृषि में स्वदेशी ज्ञान का प्रलेखन तथा बेहतर जल प्रबंधन के क्षेत्रों में कार्यरत है। केंद्र ने जनजातीय समुदाय के कल्याण के लिए सराहनीय कार्य किया है।

लेह के वर्तमान जल संकट का मुख्य कारण लद्दाख में तीव्र पर्यटन विकास के अन्तर्गत होटल, अतिथिगृह और सड़कों के निर्माण सहित क्षेत्र का चहुंमुखी विकास है। पर्यटन के अप्रतिबंधित प्रवाह ने स्थानीय पारिस्थितिकी तंत्र पर बहुत अधिक दबाव डाला है। सरकारी रिकॉर्ड के अनुसार, 1974 में जब लद्दाख को पहली बार पर्यटन के लिए खोला गया था, तब कुल घरेलू व विदेशी 527 पर्यटक यहाँ आये थे। अब लगभग 50 साल बाद, पर्यटकों की संख्या प्रति वर्ष लगभग 4.5 लाख हो गई है। बढ़ते हुए पर्यटन से जहां इस क्षेत्र में जल की मांग बढ़ी है, वहीं पशिष्ट उत्पादन, विशेषकर प्लास्टिक की बोतलों का प्रयोग भी तेजी से बढ़ा है। होटल और रेस्तरां के निर्माण में तीव्र वृद्धि से क्षेत्र का प्राकृतिक परिदृश्य कम हो रहा है। पश्चिमी मानकों के अनुसार कई पर्यटक सुविधाओं के लिए बहुत अधिक जल संसाधनों की आवश्यकता होती है जो आमतौर पर स्थानीय समुदाय की आवश्यकता से कहीं अधिक है। एक औसत लद्दाखी प्रतिदिन 20 लीटर जल का उपयोग करता है जबकि पर्यटक प्रतिदिन कम से कम 75 लीटर जल का उपयोग करता है। अतः एक जिम्मेदार पर्यटन को बढ़ावा देना समय की मांग है।

लेह शहर की वर्तमान जल की मांग विभिन्न मानकों के अनुसार 6 से 8 मिलियन लीटर/दिन है, जबकि वर्तमान जल आपूर्ति लगभग 4.5 मिलियन लीटर/दिन है। मांग में कमी की पूर्ति निजी ट्यूबवेलों से की जाती है। भूजल के अंधाधुंध दोहन ने क्षेत्र के भूजल भंडार पर भारी दबाव डाला है। पुनर्भरण के अभाव में, जल की गुणवत्ता में गिरावट के साथ कई स्थानों पर भूजल स्तर में गिरावट आई है। जुलाई-अगस्त के महीनों में हिमनदगलन से प्राप्त अतिरिक्त जल उपलब्ध होने पर भूजल को पुनः पूरित करने की तत्काल आवश्यकता है।

लेह शहर प्रतिदिन लगभग 8 मिलियन लीटर/दिन अपशिष्ट जल उत्पन्न करता है और वर्तमान जल उपचार क्षमता केवल 3 मिलियन लीटर/दिन है। वर्तमान में 5% से भी कम घर केंद्रीय सीवेज लाइनों से जुड़े हैं। शहर के अपशिष्ट जल के उपचार और उपयोग के लिए बुनियादी संरचनाओं को विकसित करने और पूरे शहर की सीवेज प्रणाली को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है।

जलवायु परिवर्तन ने लद्दाख की स्थानीय पारिस्थितिकी व वनस्पति को प्रभावित किया है। बढ़ता तापमान, संभवतः वनों की कटाई और भूमि-उपयोग के परिवर्तन में योगदान दे सकता है। यहाँ जलवायु परिवर्तन एक बड़ी समस्या है और ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन प्रमुख चिंता का विषय है। ग्रीनहाउस गैस का लगभग 50% परिवहन क्षेत्र से उत्सर्जित होता है। लद्दाख में पर्यटन उद्योग में वृद्धि के साथ, लेह शहर में अधिक कुशल सार्वजनिक परिवहन प्रणाली विकसित करने की तत्काल आवश्यकता है। विद्युत चालित बसें शुरू करने की लद्दाख प्रशासन की पहल इस दिशा में एक स्वागत योग्य कदम है।

ऐतिहासिक रूप से, लद्दाख जौ और गेहूं की खेती जैसी पारंपरिक कृषि पद्धतियों पर निर्भर रहा है। हालाँकि, बढ़ती जनसंख्या और बदलती आहार संबंधी प्राथमिकताओं के कारण कृषि भूमि का विस्तार हुआ है, जिसमें अधिकांशतः जंगलों या प्राकृतिक वनस्पति को साफ करना शामिल होता है। वनों की कटाई और भूमि-उपयोग में परिवर्तन के कारण मृदा का क्षरण हुआ है। इसके अलावा, चराई स्थानीय अर्थव्यवस्था का एक अनिवार्य हिस्सा है, परन्तु अत्यधिक चराई से मिट्टी का क्षरण होता है, जो भूमि-उपयोग परिवर्तन में योगदान देता है। वनस्पति और मिट्टी पर पशुधन का दबाव पारिस्थितिकी तंत्र के लिए हानिकारक हो सकता है। इस प्रकार, मिट्टी का कटाव क्षेत्र में कृषि उत्पादकता और अंततः जल की गुणवत्ता पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकता है।

व्यवसाय की दृष्टि से, लद्दाख में लद्दाखी आबादी का लगभग 80% भाग कृषक हैं और कृषि क्षेत्र जल का एक प्रमुख उपयोगकर्ता है। लद्दाख में जल की कमी वसंत ऋतु में सबसे ज्यादा होती है जब किसानों को अपने खेतों में बुआई करनी होती है। ऊंचे पहाड़ों पर, जहां अधिकांश हिमनद स्थित हैं, कम तापमान के कारण, हिमनदगलित जल, बुआई के समय उपलब्ध नहीं होता है और किसानों को अपने खेतों में बुआई शुरू करने के लिए लंबा इंतजार करना पड़ता है और परिणामस्वरूप फसल उगाने की अवधि और उपज कम हो जाती है। जल की किसी भी कमी से अर्थव्यवस्था और शहरी क्षेत्रों में आबादी के अस्तित्व पर गंभीर असर पड़ेगा।

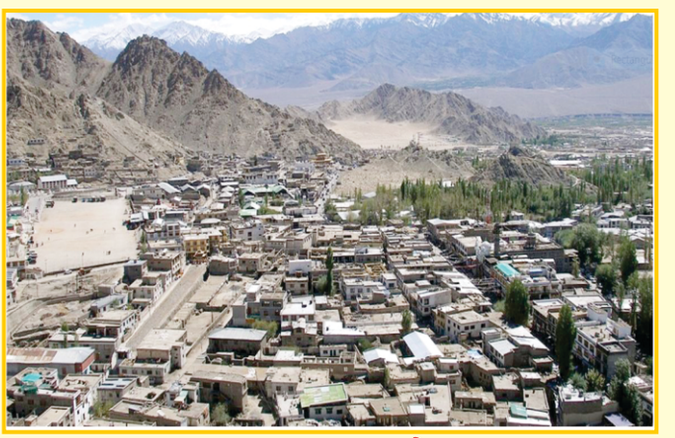

लद्दाख शहर का उपग्रह चित्र

पहाड़ी क्षेत्र में आसन्न जल संकट

से निपटने के लिए मिट्टी के कटाव को कम करने और भूमि उपयोग का प्रबंधन करने के लिए पारंपरिक भूमि प्रबंधन प्रथाओं का ऐतिहासिक रूप से लद्दाख में उपयोग किया जाता रहा है। हालाँकि, बदलती पर्यावरणीय परिस्थितियों के कारण इन प्रणालियों को चुनौतियों का सामना करना पड़ा है। आज जल प्रबंधन के लिए दीर्घकालिक कार्य योजना को अपनाने की आवश्यकता है:

- खुली सतही चैनल, प्राकृतिक रूप से बहने वाली जलधाराओं से जल को सिंचाई के लिए मार्गाभिगमित करते हैं। लद्दाख में ''खुल'' कच्ची नालियाँ होती हैं और इनमें बहुत अधिक जल रिसाव होता है। कुछ स्थानों पर रिसाव के कारण इन नालियों के अनुप्रवाह का क्षेत्र हरा-भरा हो जाता है। ऐसे मामलों में ''खुल'' में प्लास्टिक शीट के प्रयोग से जल रिसाव को काफी कम किया जा सकता है।
- ऊंचाई वाले क्षेत्रों से सिंचाई का जल ले जाने वाली सिंचाई चैनलों को उचित रूप से बनाए रखने की आवश्यकता है और यदि आवश्यक हो तो उन्हें सीमेंट से ठीक किया जाना चाहिए ताकि जल को अधिक दूरी तक पहुंचाया जा सके। चैनलों के किनारे, उपयुक्त स्थानों पर छोटे तालाबों का निर्माण किया जा सकता है ताकि इन तालाबों में जल संग्रहित किया जा सके, जो कम गहराई पर मौजूद छतों के लिए पुनर्भरण संरचनाओं के रूप में भी कार्य कर सकता है।
- पहाड़ी इलाकों में झरने और बारहमासी नाले जल के प्रमुख स्रोत हैं। जल निस्सरण और गुणवत्ता दोनों के लिए इन झरनों का प्रबोधन नियमित रूप से किया जाना चाहिए। इन झरनों को आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान के आधार पर विकसित करने तथा इनके स्रोतों को संरक्षित करने की आवश्यकता है।
- झरनों जैसे पारंपरिक संसाधनों को विभिन्न उपयोगों के लिए वैज्ञानिक आधार पर पुनर्जीवित, विकसित और संरक्षित करने की आवश्यकता है। सभी झरनों की गणना और सूची ठीक से बनाई जानी चाहिए और आंकड़े ठीक से बनाए रखे जाने चाहिए। ऐसे झरनों के प्रवाह को अनुकूल स्थानों पर अनुप्रवाह में नालों/सहायक नदियों पर छोटे चेक बांधों या उपसतह बांधों के निर्माण द्वारा बनाए रखा जा सकता है।
- भूजल पुनर्भरण के लिए छोटे तालाबों/टैंकों का उपयोग किया जा सकता है। इन संरचनाओं का निर्माण जल संचयन के लिए किया जा सकता है और इसका उपयोग पुनःपूरण और घरेलू आवश्यकताओं दोनों को पूर्ण करने के लिए किया जा सकता है।
- जहां भी स्थलाकृति शुष्क ऋतु में जल को संग्रहित करने और फसल के मौसम के दौरान आपूर्ति करने की अनुमति देती है, वहां कृत्रिम हिमनदों का निर्माण किया जा सकता है। इस तकनीक में गेबियन दीवारों का उपयोग करके हिमनदीय धारा में जल के प्रवाह को अवरुद्ध किया जाता है। सर्दियों के महीनों के दौरान, हिमनदीय धाराओं में प्रवाह धीमा होता है, और ये गेबियन दीवारें जल की गति को और कम कर देती हैं और जम जाती हैं, जिसके परिणामस्वरूप हिम बनती है। आदर्श रूप से कृत्रिम हिमनद 20-30 प्रतिशत प्रवणता वाले क्षेत्र में बनाये जा सकते हैं।
- लद्दाख में, मौसम फसल की वृद्धि और उत्पादन पर गंभीर प्रतिबंध लगाता है। पॉली-हाउस फसलों को कठोर जलवायु से बचाते हैं और उन्हें माइक्रॉक्लाइमेट के अनुकूल बनाते हैं। पॉली-हाउस मौसम की परवाह किए बिना पूरे साल फसल उगाने में सक्षम हैं। साथ ही, उपज की गुणवत्ता खुले खेत में खेती की तुलना में बेहतर होती है। खुले खेत में फसल की खेती की तुलना में पॉली-हाउस खेती से 4 से 8 गुना के स्तर तक अधिक उपज प्राप्त की जा सकती है।
- क्यागचू/खाइचू जल संरक्षण की एक स्थानीय प्रथा है। इस प्रणाली में फसल की कटाई के बाद सितम्बर/अक्टूबर माह में सिंचाई की जाती है। सर्दियों के मौसम में जल मिट्टी में जमा रहता है और बाद में उसी जल का उपयोग अप्रैल के महीने में नई फसल की बुआई के लिए किया जाता है जब हिमनद का जल उपलब्ध नहीं होता है।
- ''जिंग'' जल संचयन की एक संरचना है जिनका निर्माण हिमनद के अतिरिक्त जल के भंडारण के लिए किया जाता है। स्थानीय भाषा में इसे 'जिंग' के रूप में जाना जाता है। संग्रहित जल का उपयोग मुख्य रूप से सिंचाई के लिए किया जाता है। भंडारण जिंग का आकार पहाड़ियों से उपलब्ध हिमनद के जल की मात्रा पर निर्भर करता है।
- निम्न पॉली-सुरंगें ग्रीनहाउस का छोटा रूप हैं। निम्न पॉली-सुरंगें फसलों को हवा, पाले और प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों से बचाती हैं। निम्न पॉली-सुरंगें मौसमानुसार फसलों के उत्पादन में वृद्धि करती हैं और उन फसलों को भी उगाने का अवसर प्रदान करती है जो आमतौर पर बाहर नहीं उगती हैं।
- ट्रेंच ग्रीनहाउस का उपयोग आंशिक रूप से फसलों को गंभीर ठंड और गर्म मौसम के प्रभाव से बचाने के लिए किया जा सकता है। एक खाई में 0.5 मीटर की गहराई के साथ उपयुक्त आकार (3 मीटर X 2 मीटर) के भूमिगत कक्ष होते हैं। चैम्बर को पॉलिथीन फिल्म से ढक दिया जाता है। इस संरचना के निर्माण में अधिक कौशल की आवश्यकता नहीं होती है और यह संरक्षित खेती के सभी प्रकारों में सबसे सस्ती है।

लेह शहर प्रतिदिन लगभग 8 मिलियन लीटर/दिन अपशिष्ट जल उत्पन्न करता है और वर्तमान जल उपचार क्षमता केवल 3 मिलियन लीटर/दिन है। वर्तमान में 5% से भी कम घर केंद्रीय सीवेज लाइनों से जुड़े हैं। शहर के अपशिष्ट जल के उपचार और उपयोग के लिए बुनियादी संरचनाओं को विकसित करने और पूरे शहर की सीवेज प्रणाली को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है।

विभिन्न संस्थानों ने जल प्रबंधन में सुधार, वर्षा जल संचयन को बढ़ावा देने और स्थानीय आबादी को स्थायी जल उपयोग के बारे में शिक्षित करने के लिए विभिन्न परियोजनाएं प्रारम्भ की हैं। इसके अतिरिक्त, नीति निर्माताओं को जल संसाधनों पर पर्यटन और शहरी विकास के प्रभाव पर विचार करने और सतत विकास सुनिश्चित करने के लिए नियमों को लागू करने की आवश्यकता है। यह पूरे लद्दाख क्षेत्र के लिए एक जागृत आह्वान है कि विनियमित गुणवत्ता वाले पर्यटन के साथ एकीकृत तरीके से बढ़ते जल संकट को हल किया जाए और लद्दाख की समृद्ध विरासत को बनाए रखने के लिए स्थानीय स्वदेशी ज्ञान को बढ़ावा दिया जाए।

संपर्क करें:

डॉ. राजेश कुमार गोयल,
डॉ. महेश कुमार गौड़ एवं
डॉ. महेश्वर सिंह कंवर
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, लेह

आशीष दशोत्तर

पर्यावरण हमारी नीति में ही नहीं, हमारी रीति और प्रीति में भी शामिल हो

पर्यावरण ऐसा विषय है जिस पर कोई अकेला व्यक्ति, कोई अकेला समाज, कोई अकेला वर्ग काम करे यह संभव नहीं है। पर्यावरण हमारे जीवन से जुड़ा है। हमारी प्रकृति से जुड़ा है। इसकी चिंता हमें सामूहिक रूप से ही करनी होगी। जब तक हम सब मिलकर इस दिशा में काम नहीं करेंगे, हमें सुखद परिणाम प्राप्त नहीं होंगे। अनेकानेक विसंगतियां हैं, जिन्हें बढ़ाने में मनुष्य लगा हुआ है। हमारी अनेक आवश्यकताएं हैं जिन्हें पूर्ण करने के लिए हम प्रकृति के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। विकास की अंधी दौड़ के नाम पर हम प्राकृतिक संसाधनों को बाधित कर रहे हैं। प्राकृतिक स्थलों पर हो रही घटनाएं निरंतर हमें सचेत कर रही हैं फिर भी हम नहीं मान रहे हैं। इसे क्या समझा जाए? अगर हम अपनी ही ज़मीन खोदेंगे तो एक न एक दिन हमें उसमें गिरना ही है।

वरिष्ठ पर्यावरणविद् , लेखक एवं पत्रकार डॉ. खुशाल सिंह पुरोहित ''पर्यावरण डाइजेस्ट'' के सम्पादक हैं। आपने मूर्धन्य साहित्यकार डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' के निर्देशन में पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। पर्यावरण विषय में नीदरलैण्ड से डी. लिट् की उपाधि प्राप्त की। एक पत्रकार के रूप में स्वदेश इन्दौर, दैनिक वीर अर्जुन और हिन्दुस्तान समाचार एजेंसी के रतलाम जिला संवाददाता के रूप में कार्य किया। बाद में दैनिक स्वदेश में सह-संपादक भी रहे। पर्यावरणीय पत्रकारिता के क्षेत्र में अभूतपूर्व एवं सफल योगदान के लिए डॉ. खुशाल सिंह पुरोहित को अब तक अनेक सम्मान, पुरस्कार मिले हैं। उनकी पत्रिका आज देश की सबसे पुरानी और निरंतर प्रकाशित होने वाली पर्यावरण पत्रिका बनी हुई है। यह सुखद है कि पूरी दुनिया में इस वक़्त जब पर्यावरण पर चिंता व्यक्त की जा रही है और वातावरण को लेकर विचार-विमर्श जारी है, ऐसे में ''पर्यावरण डाइजेस्ट'' अपने प्रकाशन के 38 वर्ष पूर्ण कर रही है। पर्यावरण के लंबे अनुभव और इस क्षेत्र में किए गए महत्वपूर्ण प्रयासों पर डॉ. खुशाल सिंह पुरोहित से की गई चर्चा में कई महत्वपूर्ण तथ्य उभर कर सामने आए।

आशीष दशोत्तर-ऐसा कहा जाता है कि पर्यावरण और डॉ. खुशाल सिंह पुरोहित एक दूसरे के पूरक हैं। इसे संघर्षों से मिली सफलता कहें या संकल्प के साकार होने का प्रतिफल?

डॉ. खुशाल सिंह पुरोहित-आशीष भाई! सबसे पहले तो मैं इसे आपका स्नेह कहूंगा। यह सच है कि पर्यावरण के क्षेत्र में विगत 50 वर्षों के दौरान मुझे जल, जंगल, ज़मीन ही नहीं, वरन् प्रत्येक क्षेत्र में जुड़े रहने का अवसर मिला। ''पर्यावरण डाइजेस्ट'' और उससे भी पूर्व से मैं इनके साथ संलग्न रहा। मन में एक कसक थी कि जिस प्रकृति ने हमें इतना सब कुछ दिया है, उस प्रकृति के प्रति हम एहसान फरामोश कैसे हो सकते हैं? इसी भावना ने मुझे प्रकृति की तरफ आकर्षित किया और यह मेरा सौभाग्य रहा कि प्रकृति ने भी मुझे अपने साथ जोड़ा। यह गठबंधन निरंतर आगे बढ़ता रहा। मैं प्रकृति को समझता रहा और प्रकृति मुझे अपने अनुसार ढालती रही । आज यह महसूस ही नहीं होता कि प्रकृति और मुझमें कोई असमानता है। रही बात सफलता की तो यह मिलना, न मिलना कोई मायने नहीं रखता। हमें आत्मसंतोष होना चाहिए। मुझे यह

संतोष है कि मैंने अपनी प्रकृति को समझा और उसके साथ कुछ करने का जो प्रयास किया उसे समाज ने स्वीकारा और मुझे मान दिया।

आशीष दशोत्तर-पर्यावरण संबंधित कार्यों को अमूमन समाज में मान्यता नहीं मिलती है। आपका क्या अनुभव रहा?

डॉ. खुशाल सिंह पुरोहित-इस मायने में मैं बहुत सौभाग्यशाली रहा। पर्यावरण से जुड़े जिन मुद्दों को मैंने उठाया उनमें मुझे समाज के सभी वर्गो का स्नेह, आदर और सहयोग मिला। अनेक संस्थाओं ने मुझे पुरस्कृत और सम्मानित किया। इन सबसे मुझे अपने मिशन में निरंतर सक्रिय रहने की शक्ति प्राप्त हुई। इस बात को स्वीकार करने में मुझे कोई हिचक नहीं है कि जनसामान्य का पर्यावरण डाइजेस्ट को जो प्यार मिला है वह मेरे लिए महत्वपूर्ण है। पर्यावरण डाइजेस्ट देश की एकमात्र ऐसी पत्रिका है जो निरंतर और नियमित प्रकाशित होती रही है। यह ऐसी पत्रिका है जो विज्ञापनों पर जीवित नहीं है। इस पत्रिका में पहले पृष्ठ से लेकर अंतिम पृष्ठ तक सिर्फ पर्यावरण और प्रकृति ही मौजूद रहती है। इसलिए यह पत्रिका सभी की प्रिय बनी हुई है और हर वर्ग का इसे प्रोत्साहन निरंतर मिलता रहा है।

आशीष दशोत्तर-पर्यावरण को लेकर आम लोगों में आज जागरूकता तो बढ़ी है, लेकिन लेखन के क्षेत्र में आज भी पर्यावरण के प्रति इतनी चेतना नहीं है। विज्ञान या पर्यावरण या तकनीक को लेकर लिखने वाले काफी कम हैं। इस सम्बन्ध में आपका क्या अनुभव रहा?

डॉ. खुशाल सिंह पुरोहित-यह सही है कि इन क्षेत्रों में लिखने वाले लोग काफी कम हैं लेकिन यह भी सुखद है कि जो लोग इस क्षेत्र में निरंतर लेखन कार्य कर रहे हैं वे पूरी ज़िम्मेदारी के साथ, पूरी गंभीरता के साथ और अपने दायित्व को समझते हुए लेखन कर रहे हैं। आशीष भाई, हमें यह समझना बहुत आवश्यक है कि इन विषयों पर लिखना आसान कार्य नहीं है। इसके लिए विषय का पूरा ज्ञान और विषय से सम्बन्धित सभी संदर्भ व्यक्ति के सामने होने चाहिए। आज का युग इतनी मेहनत का युग नहीं है, इसीलिए इस तरह के लेखन में कुछ कमी नज़र आती है। फिर भी स्थिति काफी संतोषजनक है। यहां मैं उल्लेख करना चाहूंगा कि पर्यावरण डाइजेस्ट ऐसी पत्रिका है जिसने लेखक कभी उधार नहीं लिए। हमने अपना लेखक वर्ग स्वयं तैयार किया। विषय केंद्रित लेख महत्वपूर्ण लेखकों से लिखवाए। देश के प्रमुख पर्यावरणविदों को पत्रिका में स्थान दिया। आज पर्यावरण डाइजेस्ट के पास अपने ऐसे लेखकों का बहुत बड़ा वर्ग उपलब्ध है जो इस पत्रिका से प्रेरित होकर पर्यावरण के क्षेत्र में लेखन कर रहे हैं।

आशीष दशोत्तर-पर्यावरण डाईजेस्ट को आपने जिस संकल्प के साथ प्रारंभ किया था, क्या वह आज तक कायम है?

डॉ. खुशाल सिंह पुरोहित-इस मायने में मैं बहुत सौभाग्यशाली हूं और संतुष्ट भी कि जिन उद्देश्यों को लेकर मैंने यह यात्रा प्रारंभ की थी उसमें मैं बहुत हद तक सफल रहा हूं। मनुष्य अगर दृढ़ संकल्प कर ले तो क्या नहीं हो सकता? पर्यावरण डाइजेस्ट पत्रिका की शुरुआत ही हमने इस संकल्प के साथ की थी कि इस पत्रिका को सदैव जीवित रखा जाएगा। हमारा उद्देश्य पवित्र था और संकल्प दृढ़, इसीलिए हम अपने इस मिशन में कामयाब रहे। निरंतर सभी का स्नेह मिलता रहा और यह पत्रिका आज भी आपके सामने देश की सबसे पुरानी पर्यावरण पत्रिका बनी हुई है। परिवर्तन प्रकृति का नियम है। प्रकृति में हो रहे परिवर्तन के अनुसार पर्यावरण डाइजेस्ट ने भी अपने आप को परिष्कृत किया है, परिमार्जित किया है। इसके स्वरूप में परिवर्तन किया है। आज पत्रिका डिजिटली उपलब्ध है। यह सब प्रयोग निरंतर होते रहे हैं और होने भी चाहिए।

आशीष दशोत्तर-क्या आप इस बात को महसूस करते हैं कि तमाम प्रयासों के बाद भी हम प्राकृतिक समृद्धि की ओर अग्रसर नहीं हो रहे हैं? लोग चेतना संपन्न नहीं बन रहे हैं? पर्यावरण के प्रति जागरूकता का अभाव है?

डॉ.खुशाल सिह पुरोहित-देखिए! पर्यावरण ऐसा विषय है जिस पर कोई अकेला व्यक्ति, कोई अकेला समाज, कोई अकेला वर्ग काम करे यह संभव नहीं है। पर्यावरण हमारे जीवन से जुड़ा है। हमारी प्रकृति से जुड़ा है। इसकी चिंता हमें सामूहिक रूप से ही करनी होगी। जब तक हम सब मिलकर इस दिशा में काम नहीं करेंगे, हमें सुखद परिणाम प्राप्त नहीं होंगे। अनेकानेक विसंगतियां हैं, जिन्हें बढ़ाने में मनुष्य लगा हुआ है। हमारी अनेक आवश्यकताएं हैं जिन्हें पूर्ण करने के लिए हम प्रकृति के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। विकास की अंधी दौड़ के नाम पर हम प्राकृतिक संसाधनों को बाधित कर रहे हैं। प्राकृतिक स्थलों पर हो रही घटनाएं निरंतर हमें सचेत कर रही हैं फिर भी हम नहीं मान रहे हैं। इसे क्या समझा जाए? अगर हम अपनी ही ज़मीन खोदेंगे तो एक न एक दिन हमें उसमें गिरना ही है। पर्यावरण का विषय भी ऐसा ही है। इसकी चिंता हम सभी को करनी होगी। सभी मिलकर इस दिशा में काम करेंगे तो यकीनन हमें सफलता मिलेगी। बदलाव के दौर में बहुत सी विसंगतियां आती हैं लेकिन प्रकृति में इतनी ताक़त है कि वह इन सब विसंगतियों से हमें बाहर निकल सकती है। आवश्यकता इस बात की है कि हम उसे महसूस करें अपनी भूमिका को तय करें और अपने संकल्प के साथ इस कार्य को करने में जुट जाएं।

आशीष दशोत्तर- पर्यावरण को लेकर शिक्षा आवश्यक है? या इसे यूं कहा जाए कि पर्यावरण में शिक्षा पद्धति का क्या योगदान होना चाहिए। इस पर आप क्या सोचते हैं?

डॉ. खुशाल सिंह पुरोहित-यह बहुत आवश्यक प्रश्न है। मेरा हमेशा से यह मानना रहा है कि पर्यावरण सिर्फ़ वक्तव्य और नीतियों तक ही सीमित न रहे। हमारी रीति में और हमारी प्रीति में भी पर्यावरण शामिल होना चाहिए। इसके लिए पर्यावरण शिक्षा बहुत आवश्यक है। देश, समाज और सरकार सभी को समाज निर्माण के लिए सिर्फ़ और सिर्फ़ शिक्षकों से अपेक्षा रहती है। हम सब जानते हैं कि शिक्षक के कंधों पर मनुष्य का भविष्य टिका हुआ है। माता-पिता तो सिर्फ़ जन्म देते हैं लेकिन शिक्षक उसे सर्वश्रेष्ठ जीवन प्रदान करते हैं। शिक्षक की भूमिका उस दीपक की तरह होती है जो अपनी रोशनी से हजारों अपने जैसे दीपों को रोशन कर सकता है। शिक्षा की ज्योति समुचित देश और समाज को आलोकित करने के लिए समर्थ है। शिक्षक ही एकमात्र ऐसा माध्यम है जो निरंतर सृजन का शंखनाद करता है। जब यह सृजन पर्यावरण को लेकर होगा तो इसका अधिक से अधिक समाज पर प्रभाव पड़ेगा। शिक्षा के द्वारा अगर एक विद्यार्थी पर्यावरण के प्रति सचेत होता है तो वह अपनी पूरी पीढ़ी को पर्यावरण चेतना से संपन्न बनाता है।

आशीष दशोत्तर-इस शिक्षा व्यवस्था में 'पर्यावरण डाइजेस्ट' जैसी पत्रिका की भी अपनी भूमिका होनी चाहिए। क्या पत्रिका ने पर्यावरण शिक्षा को लेकर या नई पीढ़ी को पर्यावरण से जोड़ने को लेकर कोई विशेष प्रयास किए?

डॉ. खुशाल सिंह पुरोहित- यह बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न किया है आपने। मेरा ऐसा मानना है कि आपका कोई भी प्रयास जब तक नई पीढ़ी के साथ नहीं जुड़ता है वह सफल नहीं हो सकता। हमारा उद्देश्य यही होना चाहिए कि हमारे प्रत्येक कार्य से हमारा विद्यार्थी वर्ग और युवा पीढ़ी आगे बढ़े। हमने पत्रिका के माध्यम से विद्यार्थियों को जोड़ने के लिए कई आयोजन किए। उन आयोजनों में विभिन्न प्रतियोगिताओं को आयोजित कर विजयी विद्यार्थियों को पुरस्कृत किया। हमने अपनी पत्रिका को उन विद्यार्थियों तक पहुंचाया। युवा वर्ग के लेखकों को अपनी पत्रिका में स्थान देकर उनके भावों को जनमानस के सामने लाने का प्रयत्न किया। पत्रिका में कई

ऐसे अंक भी प्रकाशित किये जिसमें युवाओं को अपनी बात रखने का मौका मिला। इस तरह हमने पत्रिका के माध्यम से विद्यार्थियों और युवाओं में प्रकृति के प्रति नई चेतना का संचार करने का प्रयास किया। हमने छात्रों के लिए पर्यावरण डाइजेस्ट के अन्तर्गत कई वर्षों तक महत्वपूर्ण प्रतियोगिताएं आयोजित की। अंचल के स्कूलों तक पहुंच कर विद्यार्थियों को जागरूक किया। उन्हें पौधारोपण के प्रति प्रेरित किया। प्राकृतिक संतुलन बनाए रखने संबंधी महत्वपूर्ण मार्गदर्शन प्रदान किया। आज विद्यालयों में इको क्लब स्थापित हैं तो इस पर कहीं ना कहीं पर्यावरण डाइजेस्ट द्वारा पूर्व में किए गए प्रयासों की प्रेरणा भी मौजूद है।

पर्यावरण विकास देश की समृद्धि में सहायक।

आशीष दशोत्तर-जब भी किसी पत्रिका का प्रकाशन होता है तो एक संपादक किसी न किसी विचार के प्रति प्रतिबद्ध रहता है। आपने इस पत्रिका की शुरुआत से लेकर अब तक किस विचार के प्रति अपना समर्पण रखा?

डॉ. खुशाल सिंह पुरोहित-मेरी प्रतिबद्धता सदैव सामान्य पाठक के प्रति रही है। मेरा यह मानना रहा है कि व्यक्ति की विचारधारा उसके पाठकों पर थोपी नहीं जानी चाहिए। एक पत्रिका का संपादक अपने विचार व्यक्त करने के लिए स्वतंत्र रहता है, मगर उसे समूचे समाज का हित ध्यान में रखते हुए अपना दायित्व निभाना चाहिए। इसी दायित्व को निभाना मेरी विचारधारा का मूल तत्व रहा। जब लोक चेतना के योगदान के लिए महामहिम राष्ट्रपति जी, उपराष्ट्रपति जी, राष्ट्रीय एवम् प्रादेशिक स्तर पर विभिन्न राजनीतिक, प्रशासनिक व्यक्तियों एवं स्वयंसेवी संस्थाओं ने इन कार्यो की प्रशंसा की तो महसूस हुआ कि मैं सही पथ पर अग्रसर हूं। पत्रिका के दशकपूर्ति अवसर पर मध्यप्रदेश शासन के जनसम्पर्क विभाग ने अपनी विज्ञप्ति में उल्लेख भी किया कि- ''पर्यावरण डाइजेस्ट एक अव्यावसायिक प्रकाशन है, जो पर्यावरण संरक्षण की लोक चेतना के लिये पिछले एक दशक से सक्रिय है। पत्रिका के सम्पादक डॉ. खुशाल सिंह पुरोहित पर्यावरण संरक्षण पर विगत कई वर्षों से सक्रिय हैं तथा इस विषय पर अपनी आक्रामक शैली के लेखन के कारण अपनी अलग पहचान रखते हैं। यही कारण है कि पर्यावरण में जिस विचार को डाइजेस्ट करना मुश्किल समझा जाता है, पत्रिका उसका सरलीकरण करने में सफल हुई है। इसमें आलेखों की सारगर्भिता, संक्षिप्तता और भाषा की प्रवाहमयता अपने आप में अनूठी है। पर्यावरण से जुड़े हर पहलू का स्पर्श इसमें शामिल होता है।'' यह पत्रिका के पीछे जनचेतना की विचारधारा का ही प्रमाण है।

आशीष दशोत्तर-मालवा को प्राकृतिक दृष्टि से बहुत संपन्न माना जाता रहा है। यह कहावत भी प्रसिद्ध है, 'मालव माटी गहन गंभीर, पग-पग रोटी, डग-डग नीर'। परंतु मालवा के मिज़ाज निरंतर बिगड़ रहे हैं। इसे लेकर आपने क्या विशेष कार्य किए हैं।

डॉ. खुशाल सिंह पुरोहित-मालवा में पर्यावरण के बिगड़ते स्वरूप पर हमारा विशेष ध्यान रहा। समय-समय पर इसके लिए प्रयास भी किए। हमने मालवा के पर्यावरण की पहली नागरिक रिपोर्ट के सघन सर्वेक्षण हेतु वर्ष 1991 में दस हजार कि.मी. की यात्रा की। इस रिपोर्ट का प्रकाशन पुस्तक के रूप में हुआ। इस पुस्तक का लोकार्पण 28 जनवरी 1993 को मूर्धन्य साहित्यकार डॉ. शिवमंगल सिंह सुमन ने किया। उन्होंने अपने सम्बोधन में कहा- ''रतलाम पर्यावरण के लिए सहज भाव से सारे मध्य प्रदेश का केन्द्र हो गया है, इसके लिये मैं खुशाल सिंह पुरोहित को बधाई देता हूँ। यहां के कार्य से प्रेरणा लेकर प्रदेश के दूसरे क्षेत्रों में भी इस प्रकार का कार्य होगा। मेरी राय में बंकिमचंद जी का जो गान है, सुजलाम्, सुफलाम् अब उसमें रतलाम भी जुड़ गया है।'' मैं समझता हूं, सुमन जी द्वारा कहे गए ये शब्द हमारे प्रयासों का प्रतिफल और हमारे सरोकारों की सनद है।

आशीष दशोत्तर-आपके जीवन और कार्यो पर आचार्य विनोबा भावे का प्रभाव परिलक्षित होता है।

डॉ. खुशाल सिंह पुरोहित-आशीष जी, यह आपने सही कहा है। विनोबा जी का मेरे जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। मैं विनोबा जी के आश्रम में कई बार गया भी और उनके दर्शन का सौभाग्य भी मुझे प्राप्त हुआ। यही कारण रहा कि उनके भूदान आंदोलन और सर्वोदयी जीवन शैली से मुझे बहुत कुछ सीखने को मिला। इसकी झलक आपको पर्यावरण संबंधी अनेक लेखों एवं मासिक पत्रिका के नियमित प्रकाशन तथा पश्चिमी मध्य प्रदेश में फैले पर्यावरण कार्यो के रूप में दिखाई देती है। रतलाम शहर के पेयजल के प्रमुख स्त्रोत धोलावाड़ बांध के जलग्रहण क्षेत्र में एक रासायनिक उद्योग द्वारा प्रदूषण फैलाने के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में लोकहित याचिका लगाने जैसे विशिष्ट प्रयासों का कारण विनोबा जी के सान्निध्य से मिली ताक़त ही रही।

आशीष दशोत्तर-आपकी पत्रकारिता के गहन अनुभव रहे हैं। क्या आप समझते हैं कि बीते दशकों के दौरान कुछ ऐसे महत्वपूर्ण बदलाव रहे जिन्होंने हमारे जीवन शैली को ही बदल दिया?

डॉ. खुशाल सिंह पुरोहित-आज से 25-30 वर्ष पूर्व और आज की स्थिति में काफी परिवर्तन आया है। न सिर्फ़ जीवन मूल्य बदले, हमारे नैतिक मूल्यों और चरित्र में भी परिवर्तन आया है। व्यक्ति की सोच बदली है। इसका जीवन स्तर भी बदला है । परिस्थितियां मनुष्य को मशीन बनाने में लगी रहीं और आज

मनुष्य मशीन बन ही गया है। ऐसे में हमारे रिश्ते भी दरकने लगे हैं। आपसी संबंध टूट रहे हैं। बढ़ती तकनीकी सुविधाओं से घर परिवार का पर्यावरण भी बिगड़ रहा है। दरअसल देखा जाए तो अस्सी का दशक वैश्विक रूप से काफी परिवर्तन वाला रहा। संचार क्रांति को लेकर पूरी दुनिया में एक नया वातावरण तैयार हो रहा था। विकास के नए प्रयोग निरंतर बढ़ रहे थे। इसके साथ पर्यावरण के प्रति भी लोगों में जागरूकता बढ़ने लगी थी। यह वह समय था जब लोगों को एहसास होने लगा था कि प्राकृतिक संसाधनों से मनुष्य ने जो छेड़छाड़ की है उसके प्रतिकूल परिणाम सामने आने लगे हैं। भारत की दृष्टि से यह राजनीतिक उथल-पुथल वाला दशक भी रहा था। कई सारे नए वैचारिक परिदृश्य भी सामने आने लगे थे। मध्य प्रदेश की दृष्टि से इस दशक के अंत में पर्यावरण को लेकर नई पहल की आवश्यकता महसूस की जा रही थी। इसी आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुए एक ऐसी पत्रिका प्रारंभ करने का विचार मन में आया जो हमें हमारी प्रकृति के करीब ले जाए, प्रकृति में हो रहे है परिवर्तनों से अवगत करवाए और साथ ही आम जनता को प्रकृति से जोड़े। पत्रकारिता के जरिए भी मैंने सदैव समाज के विकास और पर्यावरण की चेतना को बढ़ाने पर ही विशेष बल दिया था। इसका लाभ भी पत्रिका को प्राप्त हुआ।

आशीष दशोत्तर-बार-बार यह कहा जा रहा है कि प्रकाशन प्रौद्योगिकी पर गंभीर संकट हैं। अख़बारों, पुस्तकों, पत्रिकाओं पर संकट है। लोगों की रुचि नहीं है। आपके साथ भी क्या यही स्थिति है?

डॉ. खुशाल सिंह पुरोहित-मैं इससे इत्तेफाक नहीं रखता। मेरा मानना है कि छपे हुए शब्दों की गरिमा और महत्व कभी कम नहीं हो सकते। हर दौर में प्रकाशित सामग्री महत्वपूर्ण हुआ करती है और आज भी बनी हुई है, आगे भी बनी रहेगी । मैंने जब अपनी पत्रिका की शुरुआत की तो कई सारे संकट मेरे सामने थे। किसी भी कार्य की शुरुआत कठिनाई भरी ही होती है। अगर यह कठिनाई न हो, चुनौतियां सामने न खड़ी हों तो उस कार्य को करने में आनंद भी नहीं आता है। फिर प्रकृति और पर्यावरण को लेकर कोई काम करना हो तो उसके लिए तो चुनौतियां आज भी हमारे सामने खड़ी हैं। पत्रिका की शुरुआत करते समय चुनौतियों का सामना करने का साहस भी पैदा हो गया। मैं समझता हूं कि आप प्रकृति की चिंता करते हैं तो प्रकृति भी आपकी चिंता करती है। आप प्रकृति की भलाई की तरफ जाते हैं तो प्रकृति भी आपकी भलाई की तरफ आती है। इसलिए उन चुनौतियों को मैं चुनौतियां न मानकर इस कार्य में अनिवार्य तत्व मानता रहा, यही कारण रहा कि पत्रिका प्रकाशन का स्वप्न धरातल पर उभर कर आ सका। इस पत्रिका की निरंतरता इस बात को रेखांकित करती है कि छपे हुए शब्द आज भी कायम हैं और इनका महत्व आगे भी बना रहेगा।

आशीष दशोत्तर-एक विचार बार-बार यह भी सामने आता है कि विकास अगर होगा तो प्रकृति तो प्रभावित होगी ही। आपका क्या सोचना है?

डॉ. खुशाल सिंह पुरोहित-यह सच है कि हम विकसित होते हैं तो हमारा बहुत कुछ पीछे छूट जाता है । इसी प्रकार हमारी प्रकृति भी अगर प्रभावित हो रही है तो इसमें कहीं न कहीं निरंतर हो रहे विकास की भूमिका है। मेरा यह मानना है कि कोई भी विकास, विनाश की शर्त पर नहीं होना चाहिए। हम प्रगति करें लेकिन अपने मूल्यों को न छोड़ें। हमारा वैभव बढ़े लेकिन हम अपनी परंपराओं से न कटें। यदि ऐसा विकास होगा तभी हम अपने प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा कर पाएंगे। हमारा सामाजिक परिवर्तन, आर्थिक परिवर्तन और राजनीतिक परिवर्तन प्रकृति से किसी तरह जुदा नहीं है। इन सभी पर प्रकृति का प्रभाव पड़ता है, और इन सभी का प्रकृति पर भी प्रभाव पड़ता है। सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में नित नए प्रयोग हुए तो हमें पर्यावरण के क्षेत्र में काम करने के नए आयाम भी मिले। किस तरह नई सूचना क्रांति पर्यावरण के प्रति घातक है? नई क्रांति से प्रकृति का कितना भला होगा? मनुष्य का जीवन कितना प्रभावित होगा? जीव जंतुओं पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा, आदि ऐसे कई विषय रहे जो हमारे पर्यावरण की चिंता के साथ इसमें शामिल होते रहे। इसी प्रकार आर्थिक परिदृश्य के नए स्वरूप में आने से भी काफी सहायता मिली। सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के माध्यम से प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग और प्रकृति के विनाश की तरफ बढ़ते कदम जैसे कई महत्वपूर्ण विषयों को हमने पत्रिका के माध्यम से उभारा। इन सब की चिंताएं हमें विकास के साथ करनी चाहिए।

आशीष दशोत्तर-आज के समय में वे कौन से मुद्दे हैं जिन पर हम सभी को मिलकर विचार करना बहुत आवश्यक है?

डॉ. खुशाल सिंह पुरोहित-हमारे सामने सबसे बड़ा मुद्दा हमारे पर्यावरण को बचाने का ही होना चाहिए। आज हम देख रहे हैं कि वैश्विक स्तर पर पर्यावरण का असंतुलित होना चिंता का विषय बना हुआ है। पूरी दुनिया इस बात पर चिंतन कर रही है कि कैसे बिगड़ते पर्यावरण को बचाया जाए। प्राकृतिक संसाधनों को बचाने के लिए तरह-तरह की कोशिशें की जा रही हैं। हमारे अपने देश में ही हम देखें तो दिल्ली में लोगों का रहना मुश्किल हो गया है। इतना प्रदूषण बढ़ गया है कि मनुष्य श्वांस तक नहीं ले पा रहा है। अन्य प्रदेशों में भी बढ़ते वाहनों और घटते वनों की परिस्थिति में पर्यावरण को काफी नुकसान हो रहा है। इन मुद्दों की तरफ हम सभी को मिलकर विचार करना चाहिए। कहते भी हैं कि प्रकृति एक चक्र की तरह है। हम जिन चीजों को पीछे छोड़ आए हैं हमें पुनः उन्हीं पर लौटना होगा। प्रकृति के साथ हमने बहुत छेड़छाड़ कर ली है, अब प्रकृति को सहेजना होगा। जिन संसाधनों को हमने भुला दिया है उन्हें फिर से अपनाना होगा। जब तक हम अपनी प्रकृति के करीब नहीं आएंगे, उससे जुड़ेंगे नहीं, न हमारा भला होगा और न हमारे वर्तमान का। हमारे भविष्य की तो पूछिए ही मत। आने वाली पीढ़ी के सामने कैसे-कैसे संकट आने वाले हैं इसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। हमारे चिंतन में, हमारे विमर्श में इन सब बिंदुओं का समावेश अगर होगा तो हम बेहतर कल की तरफ बढ़ सकेंगे।

आशीष दशोत्तर-पुरोहित जी, आपका बहुत-बहुत धन्यवाद जो आपने अपने इस लंबे सफर में कुछ लम्हे हमारे साथ बिताए और अपने पर्यावरण से हमारे पर्यावरण को हरा-भरा किया।

डॉ. खुशाल सिंह पुरोहित-आपका भी धन्यवाद आशीष भाई। इस तरह की बातें, इस तरह का विचार विमर्श और इस तरह का चिंतन निरंतर होते रहना चाहिए।

पर्यावरण डाइजेस्ट देश की एकमात्र ऐसी पत्रिका है जो निरंतर और नियमित प्रकाशित होती रही है। यह ऐसी पत्रिका है जो विज्ञापनों पर जीवित नहीं है। इस पत्रिका में पहले पृष्ठ से लेकर अंतिम पृष्ठ तक सिर्फ पर्यावरण और प्रकृति ही मौजूद रहती है। इसलिए यह पत्रिका सभी की प्रिय बनी हुई है और हर वर्ग का इसे प्रोत्साहन निरंतर मिलता रहा है।

संपर्क करें:
आशीष दशोत्तर
12/2, कोमल नगर,
रतलाम-457 001
मो. 9827084966

डॉ. डी.डी. ओझा

वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद (CSIR) द्वारा जलशोधन की विभिन्न प्रौद्योगिकियों का विकास

देश में केन्द्रीय वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद (CSIR) एक शीर्षस्थ वैज्ञानिक परिषद है जिसने अपनी स्थापना काल से ही देशवासियों के जीवन स्तर के उन्नयन हेतु, देश के सामाजिक-आर्थिक एवं वैज्ञानिक विकास में अभूतपूर्व एवं अतुलनीय योगदान दिया है तथा यह विकास की प्रक्रिया अनवरत रूप से जारी है और कालांतर में भी जारी रहेगी। इस अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त परिषद की देश में 37 उत्कृष्ट राष्ट्रीय प्रयोगशालाएँ हैं, जो देश के कोने-कोने में स्थापित की गई हैं।

यह सर्वविदित है कि विश्व में सामाजिक, शारीरिक और आर्थिक विकास के लिए जल और ऊर्जा सदैव महत्वपूर्ण रहे हैं। उनकी आपूर्ति एवं उपयोग अनवरत होना चाहिए। वस्तुतः हमारे देश में जल की उपलब्धता और गुणवत्ता दोनों की समस्या है। गुजरात, राजस्थान, उड़ीसा, तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश, हरियाणा तथा कर्नाटक में ऐसे कई क्षेत्र है, जहाँ के निवासियों को लवणीय जल का ही पेयजल के रूप में उपयोग करना पड़ता है। इतना ही नहीं कई क्षेत्रों में कुछ अन्य हानिकारक रसायन (आर्सेनिक, फ्लोराइड, नाइट्रेट, लौह आदि) भी अधिक मात्रा में जल में विद्यमान रहते हैं जो न केवल मानव वरन् मवेशियों में भी रोग उत्पन्न करते हैं।

जैसा कि विदित ही है कि हमारे देश में विगत दशकों से जनसंख्या, शहरीकरण, औद्यौगिकीकरण एवं मानव की भौतिकवादी प्रवृत्ति में वृद्धि के कारण जल व्यवस्था असंतुलित हो चुकी है तथा कई जल स्रोतों का जल भी भारतीय मानक ब्यूरो के अनुसार पीने हेतु अनुपयुक्त हो चुका है। ऐसी परिस्थिति में उपलब्ध अपेय जल को पेयजल में परिवर्तित करने हेतु जलशोधन की नितान्त आवश्यकता है।

वस्तुतः जलशोधन वह प्रक्रिया है जिसमें जल से अवांछित रसायन, जैविक अशुद्धियां, घुले हुए ठोस और गैसें आदि दूर की जाती हैं। जलशोधन का लक्ष्य जल को संसाधित करके उसे कार्य विशेष के लिए उपयुक्त बनाना है।

यदि हम अपने देश की स्थिति का अवलोकन करें तो हमारे यहाँ प्रतिवर्ष दूषित जल से औसतन 3 करोड़ 77 लाख लोग जलजनित बीमारियों जैसे हैजा, पोलियो, पेचिश, टायफाइड एवं हेपेटाइटिस से प्रभावित होते हैं और लगभग 15 लाख बच्चों की अकेले डायरिया के कारण मृत्यु हो जाती है। इसके अतिरिक्त जल में विद्यमान अत्यधिक फ्लोराइड, नाइट्रेट एवं आर्सेनिक आदि से भी करोड़ों लोग प्रतिवर्ष दुष्प्रभावित होते हैं। समुचित जलशोधन व्यवस्था के अभाव में लोग दूषित जल को ही पीने को विवश हो जाते हैं और परिणामतः अनेक रोगों से ग्रसित होते हैं।

देश में वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद (CSIR) एक शीर्षस्थ वैज्ञानिक परिषद है जिसने अपनी स्थापना काल से ही देशवासियों के जीवन स्तर के उन्नयन हेतु, देश के सामाजिक-आर्थिक एवं वैज्ञानिक विकास में अभूतपूर्व एवं अतुलनीय योगदान दिया है तथा यह विकास की प्रक्रिया अनवरत रूप से जारी है और कालांतर में भी जारी रहेगी। इस अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त परिषद की देश में 37 उत्कृष्ट राष्ट्रीय प्रयोगशालाएं है, जो देश के कोने-कोने में स्थापित की गई हैं।

वस्तुतः CSIR ने अपनी लंबी अनुसंधान यात्रा में देश के छोटे-बड़े शहरों, गांवों तथा दूर-दराज के क्षेत्रों से आगे बढ़कर सुदूर क्षेत्रों में भी स्वच्छ और सुरक्षित पेयजल उपलब्ध कराने के तकनीकी समाधानों पर विशेष ध्यान दिया है। इन समाधानों में वृहत्त प्रतिलोम परासरण (लार्ज रिवर्स ऑस्मोसिस), से लेकर घरेलू तथा सामुदायिक स्तर की इकाइयां सम्मिलित हैं-जो न केवल जलशोधन संयंत्र (वाटर प्यूरिफिकेशन प्लांट्स) वरन पोर्टेबल डिटेक्शन किट्स के रूप में भी उपलब्ध हैं। ये कम लागत वाली एवं प्रभावी प्रौद्योगिकियां हैं, जो समाज के एक बहुत बड़े वर्ग को लाभ पहुंचाकर देश के अविरत विकास में अपना योगदान दे रही हैं।

वैज्ञानिक तथा औद्यौगिक अनुसंधान परिषद (CSIR) के राष्ट्रीय पर्यावरण अभियांत्रिकी अनुसंधान संस्थान (NEERI) नागपुर, केन्द्रीय नमक व समुद्री रसायन अनुसंधान संस्थान (CSMCRI) भावनगर, केन्द्रीय इलेक्ट्रॉनिक अभियांत्रिकी अनुसंधान संस्थान (CERI), पिलानी एवं केन्द्रीय कांच एवं सिरेमिक अनुसंधान संस्थान (CGCRI), कोलकाता केन्द्रों ने जलशोधन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण अनुसंधान कर अनेक प्रौद्योगिकियां विकसित की हैं इनमें से कुछ के बारे में जानकारी निम्नवत हैः-

1. सीएसआईआर-राष्ट्रीय पर्यावरण अभियांत्रिकी अनुसंधान संस्थान : राष्ट्रीय पर्यावरण अभियांत्रिकी अनुसंधान संस्थान (NEERI), नागपुर, हमारे देश की वर्तमान सामाजिक-आर्थिक स्थिति के विकास के लिए सदैव प्रयासरत रहा है। और इस संस्थान की उपलब्धियां देश के विभिन्न भागों में क्रियान्वित हो रही हैं जिससे देशवासी लाभान्वित हो रहे हैं।

यदि नीरी द्वारा विकसित समस्त प्रौद्योगिकियों का विहंगावलोकन करें तो प्रत्येक दशक में कुछ न कुछ महत्वपूर्ण उपलब्धियां प्राप्त हुई हैं। वर्ष 1958 से 1968 के दशक में इस संस्थान का मुख्य उद्देश्य समुदायों को पेयजल सुनिश्चित करने की प्रक्रिया के विकास पर रहा और इस दौरान आर्थिक दृष्टि से उपादेय प्रौद्योगिकियां भी विकसित की गईं।

नीरी द्वारा अस्पतालों, शैक्षणिक संस्थाओं और अनुसंधान प्रयोगशालाओं हेतु एक छोटी पोर्टेबल डी-मिनरलाइजिंग इकाई अभिकल्पित की गई हैं। इसी प्रकार कुएं के जल के क्लोरीनीकरण के लिए दो प्रक्रियाएं, यथा (i) पंप के बिना कुएं के लिए तथा (ii) पंप सहित कुएं के लिए, संस्थान द्वारा विकसित की गईं। इस संस्थान ने छोटे कुओं के क्लोरीनीकरण हेतु सरल युक्ति तथा नगरीय निकायों में अवशेष क्लोरीन का अनुमान लगाने के लिए एक पॉकेट किट भी विकसित की है। नीरी ने क्लोरीन टिकियों (टेबलेटों) का भी विकास किया जो आपातकालीन स्थितियों में जल को संक्रमणमुक्त करने में प्रभावशाली रही हैं। इस संस्थान ने लाखों क्लोरीन टिकियां बनाकर उन्हें शिविरों तथा अन्य स्थानों पर जल को स्वच्छ बनाने के लिए वितरित किया है।

नीरी ने जल गुणवत्ता विश्लेषण हेतु अनेक पोर्टेबल किटों को विकसित किया है। इसके अतिरिक्त नीरी द्वारा जन स्वास्थ्य पर गंगा एक्शन प्लान के प्रभाव और मूल्यांकन से संबंधित अध्ययन भी किए गए हैं।

वस्तुतः शुद्ध एवं स्वच्छ पेयजल आपूर्ति, भारत जैसे विकासशील देश के लिए बहुत बड़ी चुनौती है क्योंकि हमारे देश में जल की उपलब्धता एवं गुणवत्ता दोनों की समस्याएं हैं। नीरी के वैज्ञानिकों ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किए हैं, जो निम्नांकित हैः-

(i) नीरी जार (पोर्टेबल इंस्टेट वॉटर फिल्टर)-नीरी जार (पोर्टेबल इंस्टेट वॉटर फिल्टर) तकनीक नीरी द्वारा विकसित एक महत्वपूर्ण जलशोधन प्रौद्योगिकी की तत्काल जलशोधन प्रणाली है, जो विशेष रूप से बाढ़ जैसी आपात स्थिति में उपयुक्त पेयजल की आपूर्ति कर सकती है। एक प्रारूपिक इकाई जिसमें 100 लीटर के दो पात्र हैं-प्रचलित किये जाने पर एक दिन में दस घंटे तक, 6-10 लीटर प्रति व्यक्ति प्रतिदिन के हिसाब से 20-30 लोगों के लिए पेयजल और भोजन बनाने के लिए आवश्यक मात्रा में जल उपलब्ध करा सकती है।

''नीरी जार''-पोर्टेबल इंस्टेट वॉटर फिल्टर।

एक प्रारूपिक इकाई में दो प्लास्टिक धारक (कंटेनर) होते हैं, जिन्हें विभिन्न ऊंचाइयों पर गुरूत्व प्रवाह से काम लेने के लिए रखा जाता है। अधिक ऊंचाई वाले कंटेनर में अपरिष्कृत जल भरा होता है। इसमें एक ऑक्सीकारक रासायनिक विलयन को मिलाया जाता है। इस प्रकार गुरूत्व द्वारा जल दूसरे प्लास्टिक कंटेनर में प्रवाहित होता है, जिसमें एक अनुबंध (फिक्सचर) तथा एक बालू-निस्यंदक (सैंड फिल्टर) होता है। फिल्टरित जल को नल के माध्यम से एक तीसरे कंटेनर में एकत्र किया जाता है। एक बार उपचारित जल के कंटेनर में एकत्रित होना आरंभ होने के साथ ही इसमें विसंक्रमण घोल मिलाया जाता है। लगभग आधे घंटे के बाद सुरक्षित पेयजल उपलब्ध हो जाता है। इस फिल्टर की समय-समय पर सफाई किया जाना आवश्यक होता है। उपचारित जल के लिए इस इकाई की प्रारम्भिक क्षमता 20-30 लीटर प्रति घंटा है।

(ii) पेयजल से फ्लुओराइड का निष्कासन-पेयजल से फ्लुओराइड की समस्या के समाधान हेतु पूर्व में इस संस्थान द्वारा विकसित नालगोंडा विधि के अतिरिक्त सौर ऊर्जा पर आधारित इलेक्ट्रोलिटिक डिफ्लोरिडेशन

सीएसआईआर- नीरी द्वारा विकसित इलेक्ट्रोलिटिक डिफ्लुओरिडेशन संयंत्र।

संयंत्र तैयार किया गया है। इसकी क्षमता 2,000 लीटर प्रति बैच (3.5 घंटों में) एवं लागत मात्र 20/- प्रति 1,000 लीटर है। इसी प्रकार फ्लोराइड की अधिक मात्रा के निष्कासन हेतु अल्प लागत वाला एक अधिशोषी पदार्थ 'निर्मल' विकसित किया गया है।

वस्तुतः यह पर्यावरण अनुकूल विद्युत-अपघटनी विफ्लुओरिडीकरण प्रौद्योगिकी है। इस प्रौद्योगिकी का संविरचन और प्रचालन दोनों सरल हैं तथा इसकी रखरखाव लागत भी कम से कम है। यह प्रौद्योगिकी 10 मिलीग्राम प्रति लीटर फ्लुओराइड सांद्रण युक्त अपरिष्कृत जल के उपचार हेतु उपयुक्त है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें अन्य रासायनिक विधियों से उपचारित विधियों की तुलना में अधिक स्वादिष्ट जल प्राप्त होता है।

छत्तीसगढ़ राज्य के चंद्रपुर जिले के वारोटा तालुका के डोंगरगांव, दुर्ग जिले के उसावारा ग्राम तथा मध्यप्रदेश के सिवनी जिले के सरगापुर ग्राम में सीएसआईआर-नीरी द्वारा इलेक्ट्रोलिटिक डिफ्लुओरिडेशन प्रौद्योगिकी की प्रदर्शन इकाइयां स्थापित की गई हैं।

आयन-विनिमय रेजिंग प्रौद्योगिकी आधारित संयंत्र।

फिल्टर) के द्वारा फिल्टन शामिल है। गुरूत्व के सिद्धान्त द्वारा प्रचालित होने के कारण इसमें बिजली की आवश्यकता नहीं पड़ती है। इसका संविरचन तथा प्रचालन भी सरल है और इसमें न्यूनतम रखरखाव की आवश्यकता पड़ती है।

(iii) जल से लौह निष्कासन-जैसा कि विदित ही है कि जल में लौह या आयरन की उपस्थिति से उसका रंग भूरा हो जाता है। इससे जल धात्विक स्थान देने वाला हो जाता है। इसका मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

सीएसआईआर-नीरी ने सामुदायिक जल आपूर्ति हेतु हैंडपंप के दर से आयरन मुक्त जल उपलब्ध करा सकती है। इसे मौजूदा हैंडपंपों के साथ जोड़ा जा सकता है। इसमें किसी भी प्रकार के हानिकारक रसायनों को मिलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती है तथा इसके प्रचालन के लिए न ही किसी कुशल ऑपरेटर और न ही बिजली की आवश्यकता पड़ती है। छत्तीसगढ के आयरन प्रभावित क्षेत्रों में ऐसे 200 से अधिक संयंत्र पहले ही स्थापित किए जा चुके हैं, जो दक्षतापूर्वक कार्य कर रहे हैं।

(iv) क्लोरीनीकरण हेतु नवाचार

क्लोरीनीकरणः सीएसआईआर की सीमेंट गारे का बना एक लघुधारक (कंटेनर) होता है, जिसे कुएं में जल के क्लोरीनेशन के लिए एक संलग्नी के रूप में निर्मित किया जाता है। क्लोरीन के विलयन को एक विशेष ड्रॉपर की सहायता से निकास नली में डाला जाता है। यह गुरूत्व के सिद्धान्त पर कार्य करता है और निकास नली में जाकर मिल जाता है। क्लोरीनेटर चालू करने से पहले कुएं के जल में पर्याप्त मात्रा में ब्लीचिंग पाउडर मिलाया जाता है, ताकि क्लोरीन की आरंभिक मांग, जो 0.5 से लेकर 1.5 भाग प्रति दस लाख (पीपीएम) होती है, की पूर्ति की जा सके। एक प्रतिशत सांद्रण युक्त ब्लीचिंग घोल को रात भर के लिए रखा जाता है ताकि यह निथर जाए। ऊपर तैरते अंश का उपयोग क्लोरीनेटर के काम करने के लिए किया जाता है।

सीएसआईआर-नीरी ने इसी अवधारणा पर आधारित एक और नवाचार किया है। इसमें मिट्टी/प्लास्टिक निर्मित एक पात्र को ब्लीचिंग पाउडर, रेत आदि से भर दिया जाता है। इस मिट्टी/प्लास्टिक पात्र के ढक्कन में 2-3 छेद होते हैं और इसकी पेंदी को कंकड़-बजरी से भर दिया जाता है। इसमें फिर ब्लीचिंग पाउडर और रेत को 1:4 के अनुपात में मिलाया जाता है और इसके बाद इसे ऊपर तक कंकड़-बजरी से भर दिया जाता है। इस पात्र को रस्सी की सहायता से 1-1.5 मीटर की गहराई तक कुएं में डुबो दिया जाता है। बाल्टी द्वारा पानी खींचने पर पात्र में झटका लगता है, जिससे कुएं में ब्लीचिंग पाउडर के निक्षारण में मदद

नीरी द्वारा अस्पतालों, शैक्षणिक संस्थाओं और अनुसंधान प्रयोगशालाओं हेतु एक छोटी पोर्टेबल डी-मिनरलाइजिंग इकाई अभिकल्पित की गई हैं। इसी प्रकार कुएं के जल के क्लोरीनीकरण के लिए दो प्रक्रियाएं, यथा (i) पंप के बिना कुएं के लिए तथा (ii) पंप सहित कुएं के लिए, संस्थान द्वारा विकसित की गई। इस संस्थान ने छोटे कुओं के क्लोरीनीकरण हेतु सरल युक्ति तथा नगरीय निकायों में अवशेष क्लोरीन का अनुमान लगाने के लिए एक पॉकेट किट भी विकसित किया है। नीरी ने क्लोरीन टिकियां (टेबलेटों) का भी विकास किया जो आपातकालीन स्थितियों में जल को संक्रमणमुक्त करने में प्रभावशाली रही हैं। इस संस्थान ने लाखों क्लोरीन टिकियां बनाकर शिविरों तथा अन्य स्थानों पर जल को स्वच्छ बनाने के लिए वितरित की हैं।

सीएसआईआर-नीरी ने पेय जल में 1 मिलीग्राम प्रति लीटर से कम फ्लुओराइड सांद्रण युक्त जल के उपचार हेतु घरेलू रसोविफ्लुओरीडीकरण (कीमो-डिफ्लुओरिडेशन) इकाइयों का भी विकास किया है। इस प्रक्रिया में कैल्सियम एवं फॉस्फोरस के लवणों के साथ अविलेय फ्लुओराइड संकुल का निर्माण और बालू निस्यंदक (सैंड साथ सम्बद्ध हो सकने वाले एक आयन निष्कासन संयंत्र का विकास किया है जो ऐसे ग्रामीण क्षेत्रों के लिए उपयोगी है जहां अधिकांश पेयजल को हैंडपंप के द्वारा प्राप्त किया जाता है। इसमें पेयजल और अन्य घरेलू कार्यो के लिए भू-जल से आयरन को निष्कासित किया जाता है। एकल इकाई प्रणाली 250 व्यक्तियों के लिए 40 लीटर प्रति व्यक्ति प्रतिदिन की विभिन्न प्रयोगशालाओं ने देश के ग्रामीण इलाकों में स्वच्छ पेयजल उपलब्ध कराने की दिशा में जो नवाचार किए हैं, उनमें सीएसआईआर-नीरी द्वारा जल कूपों के लिए विकसित क्लोरीनेटर अटैचमेंट भी शामिल हैं। यह अटैचमेंट खुले हुए कुओं अथवा उत्थापित यानी ऊंचाई वाले स्थानों पर स्थित जलाशयों को निरंतर विक्रमित करता है। इसमें

मिलती है। कुएं में लगभग एक सप्ताह तक 0.2-0.5 मिलिग्राम प्रति लीटर अवशिष्ट क्लोरीन का सांद्रण बना रहता है।

आर्सेनिक संसूचन हेतु फील्ड किट।

3. सीएसआईआर-केन्द्रीय कांच एवं सिरेमिक अनुसंधान संस्थान (CGCRI) कोलकाता

सीएसआईआर-सीजीसीआरआई ने आर्सेनिक और लौह मुक्त पेयजल (प्राकृतिक खनिज जल के तुल्य) की आपूर्ति की शुरुआत की है, जिसके परिणामस्वरूप ग्रामीण लोगों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार हुआ है। इसका स्पष्ट परिणाम पश्चिम बंगाल और उत्तर-पूर्वी राज्यों में दिखाई दिया है, जहाँ विगत 10 वर्षो में जलशोधन संयंत्र चालू किए गए हैं। आर्सेनिक संदूषित जल से बुरी तरह प्रभावित लोग आर्सेनिक मुक्त जल का उपयोग करके इस रसायन के प्रतिकूल प्रभाव को काफी हद तक कम कर सकते हैं।

सीएसआईआर-सीजीसीआरआई ने भौम-जल से आर्सेनिक और लौह (आयरन) के निष्कासन के लिए सिरेमिक झिल्ली आधारित प्रौद्योगिकी का विकास किया है। इस प्रौद्योगिकी ने अत्यधिक संदूषित भौम-जल से आर्सेनिक और आयरन का एक साथ निष्कासन कर स्वच्छ पेयजल प्राप्त करने की अच्छी संभावना का प्रदर्शन किया है। इस जल में आर्सेनिक का स्तर विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा संस्तुत सीमा (0.01 पीपीएम) से कम तथा आयरन का स्तर 0.1 पीपीएम से कम पाया गया है। यह अर्द्ध स्वचालित और उपभोक्ता अनुकूल प्रौद्योगिकी है, जिसका प्रचालन महिलाएं भी कर सकती हैं।

सीएसआईआर-सीजीसीआरआई का सिरेमिक मेम्ब्रेन आधारित उच्च क्षमता वाला मॉडयूल आविल या गंदले जल के पूर्व-उपचार में वरदान साबित हुआ है। यह नदी के जल से भी निलंबित एवं कोलाइडी कणिकीय पदार्थ निष्कासित करता है और इसे प्रतिलोम परासरण प्रणाली (रिवर्स ऑस्मोसिस सिस्टम) से जोड़ा जा सकता है।

वर्ष 2013 में पुरातन बाजार, टाकी, उत्तर चौबीस परगना में अत्यधिक गंदले तथा लवणीय नदी जल के पूर्व उपचार हेतु एक 80,000 लीटर प्रतिदिन (प्रतिदिन दस घंटे की अवधि का प्रचालन) क्षमतायुक्त सिरेमिक मेम्ब्रेन आधारित संयंत्र पूरी तरह से चालू किया गया था।

निम्न लागत वाले फिल्टर- सीएसआईआर के विभिन्न संस्थानों ने स्थानीय स्तर पर उपलब्ध सामग्री से भी निम्न लागत वाले जल-फिल्टरों का निर्माण किया है।

सीएसआईआर-सीजीसीआरआई, कोलकाता ने एक और निम्न लागत के सिरेमिक निर्मित परासूक्ष्म (यूएफ) मेम्ब्रेन आधारित जलशोधक का विकास किया है। यह बैक्टीरिया एवं अन्य सूक्ष्मजीवों द्वारा संदूषित जल के साथ-साथ आविल या गंदले जल और निलंबित संदूषक युक्त जल का भी शोधन करता है। व्यापारिक रूप से उपलब्ध जलशोधक बहु-चरणीय होते हैं, जिनमें लघु जीवनकाल वाले पॉलीमर निर्मित कार्टेज होते हैं, जिन्हें 6-7 महीने के नियमित अंतराल पर बदलना पड़ता है।

सीएसआईआर-सीजीसीआरआई ने भौम-जल से आर्सेनिक और लौह (आयरन) के निष्कासन के लिए सिरेमिक झिल्ली आधारित प्रौद्योगिकी का विकास किया है। इस प्रौद्योगिकी ने अत्यधिक संदूषित भौम-जल से आर्सेनिक और आयरन का एक साथ निष्कासन कर स्वच्छ पेयजल प्राप्त करने की अच्छी संभावना का प्रदर्शन किया है। इस जल में आर्सेनिक का स्तर विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा संस्तुत सीमा (0.01 पीपीएम) से कम तथा आयरन का स्तर 0.1 पीपीएम से कम पाया गया है। यह अर्द्ध स्वचालित और उपभोक्ता अनुकूल प्रौद्योगिकी है, जिसका प्रचालन महिलाएं भी कर सकती हैं।

सिरेमिक मेम्ब्रेन आधारित नदी जल का पूर्व उपचारण संयंत्र।

सीजीसीआरआई द्वारा विकसित जल शोधक उन्नत प्रौद्योगिकी, अनुप्रस्थ प्रवाह फिल्टरन तकनीक पर आधारित है जिसमें स्वशोधन को बढ़ावा देने के साथ-साथ बहुत कम रखरखाव की आवश्यकता होती है। इस निम्न लागत वाले सिरेमिक कोशिका झिल्ली (कैपिलरी मेम्ब्रेन) का जीवनकाल लंबा है और इसकी प्रचालन लागत भी बहुत कम है, क्योंकि इसमें बहुत कम विद्युत ऊर्जा की खपत होती है।

वर्तमान में जलशोधन के काम में प्रयोग की जाने वाली प्रमुख प्रौद्योगिकियां, यांत्रिक निस्यंदन, आर.ओ. सिस्टम, आसवन, यूवी विसंक्रमण, क्लोरीनेशन तथा ओजोनीकरण आदि हैं। ये प्रौद्योगिकियां बहुतायत से उपयोग में लाई जा रही हैं। यह देखा गया है कि इनमें यूवी विसंक्रमण तकनीक सबसे तीव्र गति से जल को शुद्ध करने का कार्य करती है। अधिकांश विकासशील देशों में नगरपालिकाओं/नगर निगमों द्वारा अपने क्षेत्रों में पेयजल की आपूर्ति इसी यूवी तकनीक से शोधित की जाती है।

4. सीएसआईआर-केन्द्रीय इलेक्ट्रॉनिकी अभियांत्रिकी अनुसंधान संस्थान (सीरी), पिलानी

वस्तुतः वर्तमान में जलशोधन के काम में प्रयोग की जाने वाली प्रमुख प्रौद्योगिकियां, यांत्रिक निस्यंदन, आर. ओ. सिस्टम, आसवन, यूवी विसंक्रमण, क्लोरीनेशन तथा ओजोनीकरण आदि हैं। ये प्रौद्योगिकियां बहुतायत से उपयोग में लाई जा रही हैं। यह देखा गया है कि इनमें यूवी विसंक्रमण तकनीक सबसे तीव्र गति से जल को शुद्ध करने का कार्य करती है। अधिकांश विकासशील देशों में नगरपालिकाओं/नगर निगमों द्वारा अपने क्षेत्रों में पेयजल की आपूर्ति इसी यूवी तकनीक से शोधित की जाती है।

वर्तमान में जलशोधन के लिए उपयोग में लाई जाने वाली यूवी लैंप तकनीक में पर्यावरण को प्रदूषित करने वाला हानिकारक पदार्थ पारे का उपयोग किया जाता है। एक अनुमान के अनुसार विश्व में प्रतिवर्ष लगभग 1.2 अरब यूवी लैंप का निर्माण किया जा रहा है। आज विश्व में यूवी लैंप का बाजार लगभग 500 अरब अमरीकी डॉलर का है। इन यूवी लैंपों के उपयोग के बाद विषैला पारा काफी मात्रा में बच जाता है जो कि बहुत घातक सिद्ध हो रहा है। आज विश्व में सभी देश उपकरणों के पारे से मुक्त होने की दिशा में शोध कर रहे हैं। दूसरा कारण उपयोग में लाए जा रहे यूवी लैंप में लैंप टूटने का खतरा बना रहता है। लैंप टूटने से उसमें मौजूद पारा यदि जल में मिल जाए तो वह प्राणी मात्र के लिए घातक हो सकता है।

अतः इस समस्या के समाधान हेतु सीएसआईआर-सीरी के वैज्ञानिकों ने पारा मुक्त प्लाज्मा यूवी लैंप प्रौद्योगिकी विकसित की है जिसकी निम्नांकित विशेषताएँ हैं-

- इसमें फिलामेन्ट की आवश्यकता नहीं है।
- इसके आयामों को आसानी से बदला जा सकता है।
- इसका पुनर्भरण आसानी से किया जा सकता है।

इस प्लाज्मा लैंप में विद्युत व्यय मध्यम दबाव वाले लैंप की अपेक्षा लगभग 250 गुणा कम होता है, जबकि कम दबाव वाले मरकरी लैंप की अपेक्षा लगभग 5 गुणा कम होता है।

इस लैंप की एक और विशेषता है कि यह डीएनए युक्त बैक्टीरिया के अलावा आरएनए युक्त बैक्टीरिया को भी निष्प्रभावी कर सकता है तथा उच्च शुद्धता का जल उपलब्ध करा सकता है।

पारा मुक्त प्लाज्मा यूवी लैंप का विकास व निर्माण एक विश्व स्तरीय तकनीकी खोज है। प्रमुख रूप से इस प्रौद्योगिकी का लाभ आम आदमी, सैनिक, किसान आदि को होगा, क्योंकि इस लैंप के द्वारा जल साफ करने के छोटे-छोटे उपकरण तैयार किए जा सकते हैं। साथ ही मॉडयुलर सिस्टम के माध्यम से नगरपालिकाओं का जल तथा सार्वजनिक स्थानों पर लगे जल के बड़े टैंकों का जल आसानी से शुद्ध किया जा सकेगा। इतना ही नहीं सीवर लाइन के जल को खेती में उपयोग करने से पूर्व हानिकारक बैक्टीरिया से भी मुक्त किया जा सकेगा।

देश में सीएसआईआर के उपर्युक्त उत्कृष्ट अनुसंधान संस्थानों के अतिरिक्त अन्य प्रयोगशालाओं में भी जलशोधन विषयक महत्वपूर्ण शोध कार्य सफलता से किए जा रहे हैं जिससे कि देशवासियों को स्वच्छ पेयजल उपलब्ध हो सके और देश की ज्वलंत समस्या का समाधान संभव हो सके।

सीरी द्वारा विकसित पारा मुक्त प्लाज्मा यूवी लैंप।

सपंर्क करें:

डॉ. डी.डी. ओझा

"गुरु कृपा", ब्रह्मपुरी, हजारी चबूतरा, जोधपुर-342 001

वैभव देवली, पंकज कुमार गुप्ता, अनुश्री मलिक

भारत में सुरक्षित और स्वस्थ पर्यावरण के लिए आर्द्रभूमि संरक्षण की आवश्यकता

आर्द्रभूमि में उपलब्ध जल की मात्रा काफी भिन्न हो सकती है। कुछ आर्द्रभूमियों में स्थायी रूप से बाढ़ जैसी स्थिति बनी रहती है जबकि अन्य में केवल मौसमी बाढ़ आती है, लेकिन बाढ़ रहित अवधि के दौरान आर्द्रभूमि की मृदा संतृप्त बनी रहती है। यद्यपि आर्द्रभूमि क्षेत्रों में शायद ही कभी बाढ़ आती हो, लेकिन आर्द्रभूमि-अनुकूलित पौधों को संरक्षण देने और हाइड्रिक मिट्टी की विशेषताओं को विकसित करने के लिए यह क्षेत्र संतृप्त होता है।

भारत के परिप्रेक्ष्य में आर्द्रभूमि का संरक्षण बहुत महत्वपूर्ण है। यह हमारे पर्यावरण, स्वास्थ्य और अर्थव्यवस्था के संवर्धन में अपनी महती भूमिका निभाता है। आर्द्रभूमि संरक्षण से सिर्फ पर्यावरण ही संरक्षित नहीं होता है बल्कि यह स्थानीय समुदायों के लिए भी लाभप्रद हो सकता है। जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में भी आर्द्रभूमि संरक्षण अपना योगदान दे सकता है। आर्द्रभूमियां हमारे पारिस्थितिकी तंत्र का एक अभिन्न हिस्सा हैं जो हमें जल ऑक्सीजन और जैव विविधता प्रदान करती हैं। आर्द्रभूमि संरक्षण की आवश्यकता को हम निम्नलिखित तथ्यों की विवेचना के माध्यम से स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं:-

आर्द्रभूमि पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

भारत अपनी भौगोलिक स्थिति, भूभाग और जलवायु क्षेत्रों में विविधता के कारण, कई जल संसाधन प्रणालियों से समृद्ध है, जो अंतर्देशीय और तटीय जल निकायों की समृद्ध विविधता का समर्थन करती हैं। भारत का लगभग 329 मिलियन हेक्टेयर भौगोलिक क्षेत्र बड़ी संख्या में छोटी और बड़ी नदियों और पर्वतों से घिरा है।

आर्द्रभूमि, भूमि का वह भाग है जो या तो जल से आच्छादित होता है या संतृप्त होता है। आर्द्रभूमि का जल सामान्यतः भूजल होता है, जो जलभृत या झरने से रिसता है। आर्द्रभूमि में जल निकटवर्ती नदी या झील से भी आ सकता है। समुद्री तटीय क्षेत्रों जहाँ विशेषकर तीव्र ज्वार आते हैं, वहां का जल भी आर्द्रभूमियों को निर्मित कर सकता है।

आर्द्रभूमि में उपलब्ध जल की मात्रा काफी भिन्न हो सकती है। कुछ आर्द्रभूमियों में स्थायी रूप से बाढ़ जैसी स्थिति बनी रहती है जबकि अन्य में केवल मौसमी बाढ़ आती है, लेकिन बाढ़ रहित अवधि के दौरान आर्द्रभूमि की मृदा संतृप्त बनी रहती है। यद्यपि आर्द्रभूमि क्षेत्रों में शायद ही कभी बाढ़ आती हो, लेकिन आर्द्रभूमि-अनुकूलित पौधों को संरक्षण देने और हाइड्रिक मिट्टी की विशेषताओं को विकसित करने के लिए यह क्षेत्र संतृप्त होता है।

जलवायु परिवर्तन के अन्तः राष्ट्रीय पैनल (IPCC) के अनुसार आर्द्रभूमि जलवायु परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, क्योंकि इनमें ग्रीनहाउस गैसों (जैसे मीथेन, कार्बन डाईऑक्साइड और नाइट्रस ऑक्साइड) की वायुमंडलीय सांद्रता को नियंत्रित करने की क्षमता बहुत अधिक होती है। जलवायु परिवर्तन प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभावों से आर्द्रभूमियों को प्रभावित कर सकता है, जिनमें तापमान वृद्धि, वर्षा की तीव्रता और आवृत्ति परिवर्तन, अत्यधिक जलवायु संबंधी घटनाएँ जैसे सूखा, बाढ़ और चक्रवात की आवृत्ति प्रमुख हैं। इस प्रकार से आर्द्रभूमि और जलवायु एक दूसरे के पूरक हैं। किसी एक में असमानता से पर्यावरण को खतरा बढ़ जाता है।

आर्द्रभूमि पारिस्थितिकी तंत्र कार्बन का भंडारण और संग्रहण करके जलवायु परिवर्तन को नियंत्रित करने में सहायता करते हैं। पीटलैंड, जो कि एक प्रकार की आर्द्रभूमि है, विश्व की केवल 3% भूमि की सतह को आच्छादित करता है, लेकिन यह विश्वभर में अनुमानित 550 गीगाटन कार्बन का सबसे बड़ा कार्बन भंडार है। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरणीय कार्यक्रम के अनुसार पीटलैंड के मूल्यों का प्रबंधन और रखरखाव, ग्रीनहाउस उत्सर्जन को 10%

कम करने के लिए त्वरित और लागत प्रभावी उपाय हैं। पीटलैंड, जैव विविधता और जलवायु परिवर्तन पर बहु-विषयक मूल्यांकन के अनुसार, यह रिपोर्ट इस बात पर बल देती है कि पीटलैंड को साफ करने से हर वर्ष तीन अरब टन से अधिक कार्बन डाईऑक्साइड गैस उत्सर्जित होती है, जो जीवाश्म ईंधन से वैश्विक उत्सर्जन के 10% के बराबर है।

आर्द्रभूमि पारिस्थितिकी तंत्र के लिए बढ़ता खतरा

भारत में आर्द्रभूमि विलुप्ति का प्रमुख कारण जनसंख्या में तीव्र वृद्धि है। शहरों के निकट पहाड़ जैसे कचरे के ढेर बनते जा रहे हैं जिससे आर्द्रभूमि के विलुप्त हो जाने का खतरा बना रहता है। कई जलस्रोत अपशिष्ट जल के एकत्रीकरण के कारण नष्ट हो गए। प्राकृतिक संसाधनों के अनावश्यक दोहन से भी जलीय जीवन खतरे में है। भारत की आर्द्रभूमि सूची तैयार करने के प्रारंभिक प्रयास 1980 और 1990 के दशक के मध्य किए गए थे। उपग्रह आंकड़ों का उपयोग करके देश की आर्द्रभूमियों का प्रथम वैज्ञानिक मानचित्रण अंतरिक्ष अनुप्रयोग केंद्र, अहमदाबाद द्वारा 1992-1993 में किया गया था। वर्तमान समय में रामसर के अनुसार भारत में कुल 75 आर्द्रभूमियां हैं। भारत की लगभग 4.6% भूमि आर्द्रभूमि के रूप में है, जिसका क्षेत्रफल 15.26 मिलियन हेक्टेयर है। आर्द्रभूमि क्षेत्र में हानि से इसके महत्वपूर्ण कार्यों पर नकारात्मक प्रभाव होता है। भारत में, आर्द्रभूमि क्षेत्र की हानि के मुख्य कारण बढ़ता नगरीकरण, भू-उपयोग में परिवर्तन, कृषि औद्योगिक प्रवाह और कृषि से होने वाले प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन आदि हैं।

नगरीकरण और भू-उपयोग में परिवर्तन

नगरीकरण और भू-उपयोग में परिवर्तन आर्द्रभूमि क्षेत्र की हानि के मुख्य कारण हैं।

1951 से 2011 तक, भारत की कुल जनसंख्या में 0.4 अरब से 1.43 अरब तक वृद्धि हुई है। जनसंख्या वृद्धि की माध्य दशकीय विकास दर 28% के आस-पास है। नगरीकरण का अर्थ शहरी क्षेत्र का विकास और बढ़ती जनसंख्या के साथ संबंधित प्रक्रियाएं होता है। शहरीकरण प्रक्रियाओं में भूमि का भू उपयोग परिवर्तित किया जाता है, जिससे आर्द्रभूमि क्षेत्रों की सीमा में कमी होती है और वहां की प्राकृतिक प्रणालियों पर दबाव बढ़ जाता है। इस विकास की मात्रा ने बढ़ती जनसंख्या की जल और खाद्य मांगों को पूरा करने के लिए आर्द्रभूमि और बाढ़ मैदानी क्षेत्रों पर भारी दबाव बनाया है। 1950-1951 से 2008-2009 तक, भारत में कुल कृषिभूमि में लगभग 129 से 156 मीट्रिक हेक्टेयर की वृद्धि हुई। साथ ही, गैर-कृषि उपयोग (वाणिज्यिक या आवासीय उपयोग) का क्षेत्रफल 9 से 26 मीट्रिक हेक्टेयर तक बढ़ा। नगरीकरण और भू-उपयोग में परिवर्तन के कारण भारतीय आर्द्रभूमि क्षेत्रों की सीमा में कमी करते हुए, इन क्षेत्रों पर बढ़ती जनसंख्या की मांग से सम्बद्ध दबाव में वृद्धि हुई है।

आर्द्रभूमि पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव।

कृषि, घरेलू, और औद्योगिक प्रदूषण

विगत चार दशकों के दौरान कृषि गतिविधियों में वृद्धि के परिणामस्वरूप, भारत में उर्वरकों के उपयोग में 1973-1974 में लगभग 2.8 मिलियन टन से बढ़कर 2022-23 में 35 मिलियन टन तक वृद्धि पायी गयी है। आंकड़ों के अनुसार, उर्वरकों के माध्यम से मिट्टियों में जोड़े गए पौष्टिक तत्वों का 10-15% भाग अंततः सतही जल प्रणाली में पहुँच जाता है। उच्च पौष्टिक तत्वों के अधिक संघटन से अलगी एवं अन्य जलीय वनस्पति के विकास को बढ़ावा मिलता है, जिससे यूट्रोफिकेशन होता है। अध्ययनों द्वारा सुझाव दिया गया है कि जल में असंगत साम्यिक नाइट्रोजन 0.5 मि.ग्रा./लीटर और जैविक फास्फोरस 0.01 मि.ग्रा./लीटर की उपलब्धता से अलगी विकास को बढ़ाता देता है जो आर्द्रभूमि की सतह को कम करता है। कृषि क्षेत्रों से प्रवाहित होने वाला जल भारतीय नदियों और आर्द्रभूमि के लिए एक प्रमुख अस्थानिक प्रदूषण का स्रोत है। इसके अतिरिक्त जब औद्योगिक प्रदूषण से निकलने वाले विभिन्न प्रदूषक वातावरण के सम्पर्क में आते हैं तब वे आर्द्रभूमि पारिस्थितिकियों के लिए खतरा पैदा करते हैं। औद्योगिक गतिविधियों से निकलने वाले विषाक्त रसायन, आर्द्रभूमि के जल स्रोतों को प्रदूषित कर रहे हैं और निरंतर जल की गुणवत्ता को खतरे में डाल रहे हैं। ऊर्जा क्षेत्र, रिफाइनरी, और चमड़े के उद्योगों में अधिकांशतः नमक की उच्च सांद्रता पाई जाती है। उदाहरण के लिए, चमड़े के उद्योगों के अपशिष्टों में नमक की मात्रा 80,000 मिलीग्राम प्रति लीटर तक हो सकती है। इस प्रकार के अपशिष्ट जल का निस्तारण करना और आर्द्रभूमि के साथ इसका मिश्रित होना एक बड़ी चुनौती है। कई औद्योगिक अपशिष्ट तटस्थ (pH=7) नहीं होते हैं, बल्कि अम्लीय या क्षारीय होते हैं। अम्लीय औद्योगिक अपशिष्टों में मुख्य रूप से खनन से निकलने वाला अपशिष्ट जल और वृहत्त मात्रा में प्रक्रमित अपशिष्ट शामिल होते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ उद्योग जैसे कि पेपर मिल, तेल उद्योग, उच्च क्षारीय अपशिष्ट जल का निर्वाहन करते हैं।

2. आर्द्रभूमि की भारत में स्थिति

भारत में आर्द्रभूमि सूची तैयार करने का प्रथम प्रयास 1980 के दशक से लेकर 1990 के दशक के प्रारम्भ में किया गया। ''एशियाई आर्दभूमि निर्देशिका'' के अनुसार भारत में नदियों, नहरों और सिंचाई चैनल के अतिरिक्त शेष आर्द्रभूमियों का क्षेत्रफल 58.2 मिलियन हेक्टेयर है। पर्यावरण और वन मंत्रालय, भारत सरकार ने वर्ष 1990 में देश के आर्द्रभूमि संसाधनों का अनुमान लगाया, जिसमें चावल के खेत और मैंग्रोव्स वृक्षों के अतिरिक्त शेष क्षेत्र लगभग 4.1 मिलियन हेक्टेयर है, जिसमें 1.5 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र प्राकृतिक है और 2.6 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र मानव निर्मित है। भारत में आर्द्रभूमि का कुल क्षेत्रफल 15.25 मिलियन हेक्टेयर है। अहमदाबाद स्थित भारतीय अन्तरिक्ष अनुसंधान संगठन (ISRO) के अंतरिक्ष अनुप्रयोग केंद्र के 1998 के परिणामों के अनुसार (चावल क्षेत्र, नदियों और नहरों को छोड़कर) कुल भारतीय आर्द्रभूमि क्षेत्र लगभग 7.6 मिलियन हेक्टेयर हैं, जिसमें

3.6 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रीय और 4.0 मिलियन हेक्टेयर तटीय आर्द्रभूमि क्षेत्र शामिल हैं। विज्ञान अनुप्रयोग केंद्र (SAC) द्वारा वर्ष 2011 में तैयार की गई ''राष्ट्रीय आर्द्रभूमि एटलस'' के अनुसार देश में कुल 201,503 आर्द्रभूमियों की पहचान की गई। भारत में, आर्द्रभूमि का जल प्रसार वर्षा ऋतु के पश्चात 7.4 मिलियन हेक्टेयर और वर्षा ऋतु से पूर्व 4.8 मिलियन हेक्टेयर है। इसी अध्ययन के अनुसार समुद्र तटीय आर्द्रभूमि का जल प्रसार क्षेत्र वर्षा ऋतु के पश्चात और वर्षा ऋतु के पूर्व क्रमशः 1.2 मिलियन हेक्टेयर और 1 मिलियन हेक्टेयर है। फरवरी 2022 के अनुसार, भारत में 49 रामसर स्थलों का नेटवर्क है जिनका कुल क्षेत्रफल 10,83,636 हेक्टेयर है, जो दक्षिण एशिया में सर्वाधिक है। भारत की भूमि का लगभग 4.6% आर्द्रभूमि के रूप में है, जिसमें 15.26 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र शामिल है। 2023 के अनुसार, भारत में रामसर स्थलों की सूची में वृद्धि हुई है और अब देशभर की आर्द्रभूमि में 75 रामसर स्थलों को शामिल किया गया है, जिनका कुल क्षेत्रफल 13,26,677 हेक्टेयर क्षेत्र है।

आर्द्रभूमि संरक्षण के लिए विश्व में किए जा रहे प्रयास

आर्द्रभूमि संरक्षण और सुरक्षा के प्रयास महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इनमें उपस्थित विभिन्न लाभों के कारण इनका पारिस्थितिकी अर्थ है। आर्द्रभूमि क्षेत्र, जैव विविधता को बनाए रखने, जल प्रवाह को नियंत्रित करने, प्रदूषण को कम करने, और विभिन्न पौधों और जीव-जंतुओं का संरक्षण प्रदान करने में एक प्रमुख भूमिका निभाते हैं। सरकारें, गैर-सरकारी संगठन (NGO), और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों ने विश्वभर में आर्द्रभूमि के संरक्षण के लिए विभिन्न कार्यों को प्राथमिकता के आधार पर प्रारम्भ किया है।

रामसर कन्वेंशन

रामसर कन्वेंशन, आर्द्रभूमि पर एक अन्तर्राष्ट्रीय संधि है जिस पर 1971 में ईरानी शहर रामसर में हस्ताक्षर किए गए थे। सम्मेलन के लिए 1960 के दशक में विभिन्न देशों और गैर सरकारी संगठनों द्वारा आर्द्रभूमि और उनके संसाधनों की सुरक्षा के लिए विचार-विमर्श प्रारम्भ प्रारम्भ हुआ था। रामसर कन्वेंशन, को आधिकारिक तौर पर अंतर्राष्ट्रीय महत्व के आर्द्रभूमि कन्वेंशन के रूप में जाना जाता है। यह संधि आर्द्रभूमि के पारिस्थितिक कार्यों और जैव विविधता संरक्षण, जल विनियमन और कई पौधों और पशु प्रजातियों के संरक्षण में उनकी महत्वपूर्ण भूमिकाओं पर बल देती है। आर्द्रभूमि पारिस्थितिकी प्रणालियों की सुरक्षा और उनके सतत प्रबंधन को बढ़ावा देने के वैश्विक प्रयास में रामसर कन्वेंशन एक महत्वपूर्ण साधन है। फरवरी, 2022 तक भारत में 49 रामसर स्थल चयनित किये गये हैं जो कुल 10,93,636 हेक्टेयर क्षेत्र को आवरित करते हैं, जो कि दक्षिण एशिया में सबसे अधिक है। भारत के वृहत्त भाग में लगभग 4.6% भूमि आर्द्रभूमि के रूप में है, जो कुल 15.26 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र को आवरित करता है।

दलदल आर्द्रभूमि।

राष्ट्रीय आर्द्रभूमि रणनीतियाँ और नीतियाँ

कई देशों ने राष्ट्रीय सरोवर रणनीतियाँ और नीतियाँ बनाई हैं जो सरोवरों के संरक्षण और सतत उपयोग को बढ़ावा देने के लिए समर्पित हैं। ये संरचनाएं अधिकांशतः कानूनी सुरक्षा, प्रबंधन योजनाएं, और समुदाय सम्बंधित कार्यों को शामिल करती हैं। भारत में राष्ट्रीय पर्यावरण नीति, 2006, पारिस्थितिक तंत्र के सरंक्षण में आर्द्रभूमि की भूमिका पर चर्चा करती है। इस नीति में ऐसे नियामक तंत्र को स्थापित करने की बात की गई है जो आर्द्रभूमि के संरक्षण का ख्याल रखें। वर्ष 2017 में पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय ने पर्यावरण संरक्षण कानून 1986 के अन्तर्गत आर्द्रभूमि संरक्षण और प्रबंधन नियम बनाये। इन नियमों की सहायता से आर्द्रभूमि का प्रबंधन तंत्र तैयार किया गया है।

नीतियों के बावजूद भी, अन्तर्राष्ट्रीय दक्षिणी एशिया के अनुमानों के अनुसार, भारत में विगत तीन दशकों में लगभग 30% प्राकृतिक आर्द्रभूमि की हानि हुई है, जिसका मुख्य कारण अवैध निर्माण, सतत शहरीकरण, कृषि क्षेत्र का विस्तार और प्रदूषण है। चेन्नई में अप्राकृतिक शहरीकरण के कारण आर्द्रभूमि की 90% हानि हुई है, जिससे शहर को जल सुरक्षा और कमजोर पर्यावरण का सामना करना पड़ रहा है। वडोदरा में 2005 से 2018 तक आर्द्रभूमि की 30. 5% हानि हुई है। हैदराबाद में अपर्याप्त कचरा प्रबंधन, बढ़ते प्रदूषण और अनियंत्रित शहरी विकास के कारण अपने यहां स्थित आर्द्रभूमि की 55% हानि हुई। मुंबई में 71%, अहमदाबाद में 57%, बेंगलुरु में 56%, पुणे में 37% और दिल्ली-राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में आर्द्रभूमि की 38% हानि हुई है, जिसका मुख्य कारण निर्माण और प्रदूषण है।

आर्द्रभूमि संरक्षण और इसकी भारत में आवश्यकता

आर्द्रभूमि संरक्षण एक महत्वपूर्ण पर्यावरणीय उपाय है जिसका उद्देश्य क्षतिग्रस्त या विलुप्त हो चुकी आर्द्रभूमि पारिस्थितिकियों को पुनर्जीवन प्रदान करना और उनकी पारिस्थितिक समृद्धि को सुरक्षित रखना है। इन विशेष आवासों में मार्शेस, स्वैम्प्स, और मैंग्रोव्स जैसी विभिन्न प्रकार की आर्द्रभूमियां शामिल हैं, जो जलवायु, जल संशोधन, बाढ़ नियंत्रण, और विविध वन्यजीव और वनस्पतियों के लिए आवास के रूप में महत्वपूर्ण सेवाएं प्रदान करती हैं। मानव गतिविधियों, बढ़ते शहरीकरण, और जलवायु परिवर्तन ने वैश्विक स्तर पर कई आर्द्रभूमियों की क्षति में

भारत में आर्द्रभूमि को सबसे उपजाऊ लेकिन लुप्तप्राय पारिस्थितिक तंत्रों में से एक माना जाता है। व्यापक उपयोग, साथ ही तीव्र जनसंख्या वृद्धि ने इस पारिस्थितिकी तंत्र को और खराब और पर्यावरणीय परिवर्तनों के प्रति संवेदनशील बना दिया है। समकालीन समय में, मानवीय आवश्यकताओं के अनुरूप आर्द्रभूमियों में निरंतर परिवर्तन हो रहा है और भारत में वर्तमान आर्द्रभूमि की घटती दर गंभीर पर्यावरणीय परिणामों की ओर बढ़ सकती है।

महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। आर्द्रभूमि पुनर्स्थापना में एक समग्र दृष्टिकोण शामिल है, जिसमें भौतिक, रासायनिक, और जैविक हस्तक्षेप सम्मिलित हैं जिससे प्राकृतिक स्थितियों को पुनः स्थापित किया जा सकता। इस प्रक्रिया में जलवायुशास्त्रीय पद्धति को पुनः स्थापित करना, स्थानीय वनस्पतियों को

भरतपुर राष्ट्रीय उद्यान में आर्द्रभूमि क्षेत्र।

पुनः प्रस्तुत करना, और जल गुणवत्ता में सुधार करना शामिल हो सकता है। सफल आर्द्रभूमि संरक्षण न केवल जैव विविधता की रक्षा करता है बल्कि सतत जल प्रबंधन का संरक्षण भी करता है। इसके साथ-साथ आर्द्रभूमि संरक्षण जलवायु परिवर्तन को कम करने में भी योगदान करता है और स्थानीय समुदायों के लिए आवश्यक सेवाएं प्रदान करता है। यह सरकारों, संरक्षण संगठनों, समुदायों और हितधारकों के सहयोग से होने वाला एक सामूहिक प्रयास है जिसका उद्देश्य इन महत्वपूर्ण पारिस्थितिकियों की दीर्घकालिक स्वास्थ्य और प्रतिरक्षा सुनिश्चित करना है।

मौसम की परिवर्तनीय घटनाओं के प्रभाव को कम करने हेतु भारत जैसे देश के लिए आर्द्रभूमि का संरक्षण अत्यंत आवश्यक है, जो विभिन्न वर्षा पद्धतियों के प्रति संवेदनशील है। इसके अतिरिक्त आर्द्रभूमि को भारतीय सांस्कृतिक कार्यप्रणाली में गहराई से समाहित किया गया है, जो कई समुदायों के लिए धार्मिक और पारंपरिक रूप से महत्त्वपूर्ण है। आर्द्रभूमि के बहुपक्षीय महत्व को पहचानते हुए, भारत में आर्द्रभूमि के संरक्षण के लिए उठाए गए कदम, जैसे कि रामसर स्थलों की पहचान और आर्द्रभूमि नियमों की तैयारी, इनके संरक्षण को सुनिश्चित करने में योगदान करते हैं, तथा पारिस्थितिक सततता और पर्यावरण और लोगों के कल्याण के प्रति प्रतिबद्धता का परिचायक हैं।

भारत में आर्द्रभूमि पुनर्स्थापना और बचाव का प्रयास

भारत में आर्द्रभूमि को सबसे उपजाऊ लेकिन लुप्तप्राय पारिस्थितिक तंत्रों में से एक माना जाता है। व्यापक उपयोग, साथ ही तीव्र जनसंख्या वृद्धि ने इस पारिस्थितिकी तंत्र को और खराब और पर्यावरणीय परिवर्तनों के प्रति संवेदनशील बना दिया है। समकालीन समय में, मानवीय आवश्यकताओं के अनुरूप आर्द्रभूमियों में निरंतर परिवर्तन हो रहा है और भारत में वर्तमान आर्द्रभूमि की घटती दर गंभीर पर्यावरणीय परिणामों की ओर बढ़ सकती है।

इन समस्याओं को नियंत्रित करने के लिए, पुनर्स्थापना ही एकमात्र विकल्प नहीं, बल्कि अंतिम आवश्यकता है। विभिन्न जैविक पुनर्स्थापना अभ्यास और वातावरणीय पुनर्स्थापनाएं पर्यावरण प्रदूषण को नियंत्रित करने में सक्षम हैं। इन प्रयासों से आर्द्रभूमि के भौतिक-रासायनिक गुणधर्मों जैसे कि पीएच मान, पोषण उपलब्धता, अनॉक्सिया, ठोस गुणधर्म, और मृदा खारापन का पुनर्निर्माण किया जा सकता है।

आर्द्रभूमि पुनर्स्थापना तकनीक में, जलीय मृदा स्थिति, जलवायुवीय पौध समुदाय, और तात्कालिक जलीय स्थितियों में परिवर्तन शामिल हैं। आर्द्रभूमि संरक्षण रणनीतियों में अंतर्निहित, स्वदेशी पौध और जन्तु समुदायों की पुनर्स्थापना की तकनीक शामिल है। भूमि क्षरण को कम करना जैसे कि अवशेष प्रबंधन, संरक्षण फसल प्रबंधन, टिलेज, वृक्षारोपण, भूमि उपयोग परिवर्तन की कमी, वन्यप्रवृत्ति की वृद्धि और सिंचाई सबसे आम अनुप्रयोगित तकनीकें हैं।

भारत में आर्द्रभूमि संरक्षण के लिए कोई विशिष्ट कानूनी प्रावधान नहीं होने के बावजूद, आर्द्रभूमि की रक्षा और प्रबंधन पर, कई अन्य कानूनी यंत्रों का असीमित प्रभाव होता है। इनमें भारतीय मत्स्य अधिनियम 1897, भारतीय वन अधिनियम 1927, वन्य जीव संरक्षण अधिनियम 1972, जल (प्रदूषण की रोकथाम एवं नियंत्रण) अधिनियम 1974, प्रादेशिक जल महाद्वीपीय शेल्फ, अनन्य आर्थिक क्षेत्र एवं अन्य समुद्री क्षेत्र अधिनियम 1976, जल (प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण) उपकर अधिनियम, 1977, भारतीय समुद्री क्षेत्र (विदेशी जहाजों द्वारा मछली पकड़ने का विनियमन) अधिनियम, 1981, वन संरक्षण अधिनियम, 1980, पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986, वन्य जीव संरक्षण (संशोधन) अधिनियम, 1991 जैव विविधता संरक्षण अधिनियम 2002 तथा अनुसूचित जनजातियां एवं अन्य पारम्परिक वनवासी (वन अधिकारों की मान्यता), अधिनियम, 2006 शामिल हैं। वर्ष 2000 से पूर्व, भारत में आर्द्रभूमि संरक्षण के लिए नीतिगत समर्थन प्रायः अद्यतित नहीं था। आर्द्रभूमि प्रबंधन पर गतिपूर्वक काम मुख्य रूप से रामसर समझौते के अन्तर्गत किया गया।

भारत में आर्द्रभूमि की रक्षा के लिए भारत सरकार ने 2017 में कुछ नियम बनाए। ये नियम आर्द्रभूमियों की प्राकृतिक विशेषताओं का ख्याल रखने और यह सुनिश्चित करने में सहायता करते हैं कि उन्हें नुकसान न हो। नियम कहते हैं कि लोग आर्द्रभूमियों को नुकसान पहुंचाने वाले काम नहीं कर सकते, जैसे उनमें गंदा पानी डालना या कचरा फेंकना। इसके बजाय, उन्हें आर्द्रभूमि का उपयोग इस तरह करना चाहिए जिससे आर्द्रभूमियों को स्वस्थ रहने में सहायता मिले।

भारत में अनियोजित शहरीकरण और बढ़ती जनसंख्या ने आर्द्रभूमि पर अपना प्रभाव डाला है। आर्द्रभूमि के प्रबंधन के लिए एक एकीकृत दृष्टिकोण की आवश्यकता है। जिसके लिए शिक्षित शिक्षाविदों, शोधकर्ताओं और पेशेवरों के सफल संबंधों की आवश्यकता है, जिसमें जल वैज्ञानिकों, पारिस्थितिकीय विशेषज्ञों, जलविभाजक प्रबंधन विशेषज्ञों, योजनाकारों और निर्णयकर्ताओं को परस्पर जोड़ा जाना चाहिए। ये सभी आर्द्रभूमि के समग्र प्रबंधन के लिए दीर्घकालिक संरक्षण और प्रबंधन की रणनीतियों के प्रति बढ़ती जागरूकता और समझ को बढ़ावा देंगे। स्थानीय स्कूलों, कॉलेजों और जल स्रोतों के पास सामान्य जनता के मध्य आर्द्रभूमि के महत्व के बारे में शिक्षात्मक कार्यक्रमों का प्रारंभ करना तथा साथ ही आर्द्रभूमि की जल गुणवत्ता का निरंतर प्रबोधन करना आर्द्रभूमियों को और अधिक क्षति से बचाने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

संपर्क करें:

वैभव देवली, पंकज कुमार गुप्ता एवं अनुश्री मलिक

ग्रामीण विकास और प्रौद्योगिकी केंद्र,
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, दिल्ली,
नई दिल्ली-110 016

प्रेम सागर उनियाल

जल बचाओ

जल बचाओ

जल ही जीवन, इसे बचाओ
नभ, जल, थल में, जल ही जीवन
हम सबका है, यह कर्तव्य
व्यर्थ न गंवाओं, जल को

पशु-पक्षी, पेड़-पौधे या इंसान
जल के बिना सभी परेशान
जल का जीवन से है नाता
बिन जल सब कुछ है सूना
जल ही जीवन, इसे बचाओ।

खेती-बाड़ी या हो सिंचाई
जल की महत्ता अपरम्पार
चलते-चलते जब थक जाओ
लग जाती है सबको प्यास
जल ही जीवन, इसे बचाओ।

चाहे कोई भी हो महीना
हर पल जरूरी है जल संचय
सर्दी, गर्मी या हो बरसात
जल के बिना सब कुछ बरबाद
जल ही जीवन, इसे बचाओ।

बिना भोजन के काम चले
पर ना चले बिन जल के काम
जब-जब वर्षा होगी
धरती होगी रिचार्ज
जल ही जीवन, इसे बचाओ।
जल ही जीवन, इसे बचाओ।

जल है जरूरी

पानी बरसे पानी बरसे
बरसे जब-जब पानी
हो जाती है धरती हमारी
पानी ही पानी, पानी ही पानी।।

मेघ बरसे झर-झर-झर
हवा चले जब फर-फर-फर
धरती भी गीली, हवा भी गीली
पेड़-पौधे गीले-गीले।।

नभ से पानी धरती सोखे
ठंडी-ठंडी हवा चले जब
सर्द हवाएं, सोंधी खुशबू
धरती पीये, पानी ही पानी।।

मेघ बरसे जब-जब
धरती में होवे जल ही जल
हर पल ऐसा जीवन चलता
तो धरती होती रहे रिचार्ज।।

पेड़-पौधों को चाहिए पानी
जीव-जन्तु हो या इंसान
पानी पर सब रहे निर्भर
हर पल व हर बार।।

गर्मी हो या मौसम सर्द
ऋतु कोई भी हो आई
जल तो जरूरी ही है
बिन जल सब बेकार।।

पानी से जीवन अनमोल
पानी से ही जीवन खुशहाल
धरती में हो जब ज्यादा जल
तभी मिले सभी को जल।।

जल ही जीवन

जल ही जीवन
जल, जल, जंगल के बल पर
पल-पल जीवन के रंग में
जल की महिमा है अपार।।

जल ही जीवन, जल हो पूरा
जल के बिना, जीवन है अधूरा
जल से बनता है जीवन
बनता है खुशहाल जीवन।।

जल ही जीवन
बिन जल सब बेकार
जल से संवरे रंग-रूप
जल की महिमा अपरम्पार।।

जल ही जीवन, जल ही जीवन
हर पल संवारो, जल से जीवन,
सदा रखो जल की महिमा
जल से बनता जीवन अपार।।

संपर्क करें।
प्रेम सागर उनियाल
आई.आर.आई. रुड़की।

जलवायु परिवर्तन : संपूर्ण विश्व की एक बड़ी आपदा

गौरीशंकर वैश्व विनम्र

विज्ञान एवं पर्यावरण केन्द्र द्वारा प्रकाशित पत्रिका ''डाउन टु अर्थ'' ने वर्ष 1988 से 2018 तक 30 वर्षों के भारत मौसमविज्ञान विभाग (IMD) के आंकड़ों का विश्लेषण करने के लिए भारत के 28 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेश जम्मू-कश्मीर के 730 जिलों में से 676 को चयनित किया। आंकड़ों के अनुसार, 62 प्रतिशत जिलों में माह जून में वर्षा की कमी पाई गई, इससे खरीफ की बुआई प्रभावित हुई और कृषि उत्पादन बहुत कम हुआ। जलवायु परिवर्तन के व्यापक प्रभाव के कारण ही शुष्क दिनों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, वर्षा कम होने से जनजीवन का संकट बढ़ा है और फसलों का उत्पादन कम हुआ है।

आज संपूर्ण विश्व जलवायु परिवर्तन जैसी विकट समस्या से जूझ रहा है। वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन के वैश्विक तथा क्षेत्रीय प्रभावों के कारण यह एक विचारणीय समस्या बनी हुई है।

सामान्यतः जलवायु का आशय किसी दिए गए क्षेत्र में दीर्घावधि तक माध्य मौसम से होता है। अतः जब किसी क्षेत्र विशेष के माध्य मौसम में परिवर्तन आता है, तो उसे जलवायु परिवर्तन कहते हैं। यदि वर्तमान संदर्भ में बात करें, तो इसका अत्यधिक वैश्विक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

सम्पूर्ण विश्व में अब सब कुछ बदल रहा है और आशंका है कि निकट भविष्य में यह अनेक संकटों को जन्म देगा। द वर्ल्ड वेदर एट्रिब्यूशन ग्रुप (WWAG) ने भारतीय उपमहाद्वीप के विषय में ग्रीष्म लहर (लू) के बारे में गंभीर भविष्यवाणी की है। भारतीय मौसम विभाग ने 122 वर्ष पूर्व के अभिलेखों के दस्तावेजीकरण के आरंभ होने के बाद से इस वर्ष मार्च माह को सबसे अधिक उष्ण माह घोषित किया है। यह तापमान औसत तापमान से लगातार 3 डिग्री सेल्सियस से 8 डिग्री सेल्सियस अधिक पाया गया, जिसने देश के कई भागों में कई दशक के उच्च तापमान के कुछ सर्वकालिक रिकॉर्ड तोड़ दिए।

भारत मौसमविज्ञान विभाग (IMD) के नवीनतम आंकड़ों के अनुसार माह जून तक कम वर्षा होगी और इसके बाद सितंबर माह से दीर्घावधि तक भारी वर्षा होगी। वर्ष 2008 के बाद से नौ वर्षों में जून में सामान्य से कम और छह वर्षों में सामान्य से अधिक मानसूनी वर्षा अंकित की गई है, इसका अर्थ यह है कि मानसून वास्तव में जुलाई से शुरू होता है, जबकि भारतीय कालगणना के अनुसार प्रति वर्ष वर्षा ऋतु आषाढ़ मास में प्रथम नक्षत्र आद्रा से प्रारंभ होती है।

पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय के पूर्व सचिव एम. राजीवन के अनुसार-''हम मानसून के माह जून में देर से आने या कमजोर रहने और फिर माह सितंबर के बाद भी वर्षा जारी रहने की प्रवृत्ति देख रहे हैं।'' यह बदलाव विलंबित पश्चिमी विक्षोभ और जलवायु परिवर्तन के संकट के फलस्वरूप आर्कटिक समुद्री हिमगलन से जुड़ा हो सकता है। भारत को प्रभावित करने वाले पश्चिमी विक्षोभों की संख्या बढ़ रही है, किंतु उत्तर-पश्चिमी हिमालय में सर्दियों में वर्षा लाने वाले मजबूत विक्षोभों की संख्या वास्तव में घट रही है, जिससे कम हिमपात और अधिक ऊँचाई पर शुष्क स्थिति उत्पन्न हो रही है। कमजोर वर्षा के कारण उत्तर भारत में गर्मी में लगातार वृद्धि हो रही है।

विज्ञान एवं पर्यावरण केन्द्र द्वारा प्रकाशित पत्रिका ''डाउन टु अर्थ'' ने वर्ष 1988 से 2018 तक 30 वर्षों के भारत मौसमविज्ञान विभाग (IMD) के आंकड़ों का विश्लेषण करने के लिए भारत के 28 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेश जम्मू-कश्मीर के 730 जिलों में से 676 को चयनित किया। आंकड़ों के अनुसार, 62 प्रतिशत जिलों में माह जून में वर्षा की कमी पाई गई, इससे खरीफ की बुआई प्रभावित हुई और कृषि

उत्पादन बहुत कम हुआ। जलवायु परिवर्तन के व्यापक प्रभाव के कारण ही शुष्क दिनों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, वर्षा कम होने से जनजीवन का संकट बढ़ा है और फसलों का उत्पादन कम हुआ है।

चिंताजनक रूप से, रिपोर्ट में यह निष्कर्ष निकाला गया कि चरम मौसम की घटनाएं, जो कभी 100 वर्षों में एक बार घटित होने वाले मानी जाती थीं, अब पूर्व की तुलना में उनके घटित होने की 30 गुणा अधिक संभावना है। समान रूप से चिंताजनक बात यह है कि माह मार्च जहां सबसे शुष्क महीनों में से एक था और अप्रैल में होने वाली वर्षा भी उत्तर भारत की फसल उगाने वाले क्षेत्रों के लिए सामान्य से कम होती थी। इसके विपरीत, वर्तमान में केरल के कुछ भागों में बेमौसम वर्षा के कारण किसानों को धान की कटाई के लिए जलमग्न खेतों से गुजरना पड़ा। फिर भी किसानों को कम गुणवत्ता वाली फसल प्राप्त हुई।

जलवायु परिवर्तन से विश्व के कई भागों में गेहूँ से लेकर जौ और खाद्य तेलों का उत्पादन कम हो गया है, इससे इन सभी चीजों का पर्याप्त अभाव पाया जा रहा है। ऐसे में अपनी खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए जो देश विशुद्ध रूप से खाद्यान्न के आयात पर निर्भर हैं, उनके यहां भुखमरी की विकट समस्या उत्पन्न हो गई है।

जलवायु परिवर्तन के प्रमुख कारण

- पृथ्वी का एक बड़ा भाग धीरे-धीरे पृथक होने से महाद्वीपों का निर्माण हुआ। धरती के विखण्डन ने महानगरीय धाराओं तथा वायु के प्रवाह को परिवर्तित कर दिया। जिसका प्रभाव जलवायु पर पड़ा।
- ज्वालामुखी विस्फोट से पर्याप्त मात्रा में सल्फर-आईऑक्साइड, सल्फर-ट्राई ऑक्साइड, क्लोरीन, जलवाष्प, धूलकण और राख चारों ओर फैल जाती हैं। जो जलवायु को अनेक वर्षों तक प्रभावित करती है।
- नासा के वैज्ञानिकों ने एक अध्ययन में बताया है कि आर्कटिक के भूतल में ग्रीनहाउस गैस मीथेन का विशाल भण्डार है जो आर्कटिक पर एकत्रित बर्फ को पिघला रही है। इस गैस से वातावरण गर्म हो रहा है। जिससे वैश्विक स्तर पर तापमान में वृद्धि हो रही है।
- ग्रीनहाउस प्रभाव एक ऐसी घटना है, जिसके द्वारा पृथ्वी का वायुमण्डल, गुजरते हुए सूर्य के प्रकाश में, कार्बन डाईआक्साइड, जलवाष्प तथा मीथेन जैसी गैसों की उपस्थिति में सौर विकिरण को अपने अंदर अवशोषित कर लेता है तथा पृथ्वी की सतह तथा निचले वातावरण को सामान्य से अधिक गर्म कर देता है।
- जीवाश्म आधारित ईंधन के दोहन से कार्बन-डाईऑक्साइड एवं नाइट्रोजन-डाईऑक्साइड जैसी गैसों के उत्सर्जन में वृद्धि हुई है। इससे जलवायु परिवर्तन की समस्या विकराल हुई है और अम्लीकरण तथा वायु और जल प्रदूषण में भी वृद्धि हुई है।
- शहरीकरण और औद्योगिकीकरण के कारण लोगों की जीवनशैली में काफी परिवर्तन आया है। सम्पूर्ण विश्व में वाहनों की संख्या में बहुत अधिक वृद्धि हुई है। इससे खतरनाक गैसों का उत्सर्जन, पर्यावरण को हानि पहुंचा रहा है।
- वनों और पेड़ों के अंधाधुंध कटान से हरित क्षेत्र कम हो रहा है, इससे जलवायु परिवर्तन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है।

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव

जलवायु परिवर्तन के कारण सम्पूर्ण विश्व में इसका भीषण प्रभाव दिखने लगा है। अपने देश में ही वर्ष 2023 में देश के लगभग सभी राज्यों में किसी न किसी रूप में चरम मौसमी घटनाएं हुई हैं। देश में भारी वर्षा, बादल फटना, आकाशीय बिजली गिरना, सूखा, बाढ़, शीत लहर, भीषण गर्मी जैसी चरम मौसमी घटनाओं में वृद्धि हुई है।

वैज्ञानिकों का मानना है कि विगत कुछ समय से तापमान में अप्रत्याशित वृद्धि देखी जा रही है। वैज्ञानिक मान रहे हैं कि अल नीनो के कारण विभिन्न मौसमी समस्याएं पाई जा रही हैं, यह समस्या भीषण ग्रीष्मकालीन/शीतकालीन स्थिति की हो सकती है। यह प्रभाव केवल अपने देश में ही नहीं, वरन् सारे विश्व में दृष्टिगोचर होगा।

जलवायु में अचानक परिवर्तन

कभी-कभी किसी स्थान पर अकस्मात जलवायु परिवर्तन किसी प्राणी या पौधे के लिए अनुकूल नहीं होता है। स्थान परिवर्तन से व्यक्ति बीमार पड़ जाता है। घने कोहरे के कारण विमानों की उड़ानें स्थगित हो जाती हैं। लू का अत्यधिक प्रकोप होने के कारण घर से निकलना कठिन हो जाता है। यह सब जलवायु में अचानक परिवर्तन के कारण होता है। यह प्राणी का परिस्थिति के साथ सामंजस्य स्थापित न कर पाने के कारण होता है। अस्थायी जलवायु परिवर्तन से शारीरिक और मानसिक स्थिति, परिवर्तित परिवेश में असंतुलित हो जाती है। जीवन में उद्भव और नई प्रजातियों के विकास में भी पर्यावरण अनुकूलन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

माध्य तापमान में वृद्धि

आने वाले दशकों में दुनियाभर में माध्य तापमान में वृद्धि होने की संभावना है। उच्च अक्षांशों में बढ़ते माध्य तापमान से मौसम का प्रभाव सकारात्मक, किंतु उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में प्रभाव हानिकारक होने की संभावना है। भारत में पर्वतीय प्रदेशों के तापमान में अप्रत्याशित रूप से वृद्धि हुई है।

चरम मौसमी घटनाओं से आजीविका पर संकट

बार-बार होने वाली चरम मौसमी घटनाएं जैसेः सूखा, बाढ़ और चक्रवात आदि आजीविका को नष्ट करती हैं। इसके कारण अधिक गरीबी और भुखमरी बढ़ जाती है। फल-फूल तथा फसलों की गुणवत्ता घटने के साथ ही उत्पादकता कम हो जाती है। इससे जानवरों और पौधों की अनेक प्रजातियां विलुप्त हो रही हैं।

सूखा

जलवायु परिवर्तन के कारण कम

जलवायु परिवर्तन का पर्यावरण पर प्रभाव।

जलवायु परिवर्तन से विश्व के कई भागों में गेहूँ से लेकर जौ और खाद्य तेलों का उत्पादन कम हो गया है, इससे इन सभी चीजों का पर्याप्त अभाव पाया जा रहा है। ऐसे में अपनी खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए जो देश विशुद्ध रूप से खाद्यान्न के आयात पर निर्भर हैं, उनके यहां भुखमरी की विकट समस्या उत्पन्न हो गई है।

वर्षा की अवधि का परिणाम भयावह होता है। इससे सूखे की तीव्रता, आवृत्ति और सूखा अवधि में वृद्धि की संभावना रहती है। सूखे से कृषि उत्पादन में हानि होती है। इससे खाद्यान्न का कम उत्पादन हो पाता है, फल-सब्जियों का उत्पादन कम होने से वे महंगी हो जाती हैं। पशुओं को अपेक्षित चारा न मिल पाने के कारण पशुधन की मात्रा और उत्पादकता कम हो जाती है।

वर्षा के प्रारूप में परिवर्तन

विगत कुछ दशकों से बाढ़, सूखा और वर्षा आदि की अनियमितता बहुत बढ़ गई है। यह जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप हो रहा है। इससे मरूस्थलों का फैलाव एक बड़ी समस्या के रूप में उभरा हे। पहले से जल की समस्या झेल रहे क्षेत्र में जल की मात्रा में कमी और भूजल-स्तर में गिरावट आने के कारण जल का संकट और बढ़ गया है।

ग्रीष्म लहर

ग्रीष्म (मई-जून) ऋतु में कुछ दिन ग्रीष्म लहर अर्थात लू चलना सामान्य बात है। यह ग्रीष्म ऋतु की एक प्रमुख प्राकृतिक घटना है, किंतु विगत कुछ वर्षों से ही मौसम में वह समानता नहीं दिखी, जो प्रायः 5-10 वर्षों पहले होती थी। वर्ष 2023 में जुलाई सबसे गर्म मास था। वर्ष 2024 की ग्रीष्म लहर हम पूरे मई-जून मासों से झेलते आ रहे हैं। यह जलवायु परिवर्तन का ही गंभीर संकेत है और हम प्रकृति के महाप्रकोप का प्रहार सहन करने के लिए विवश हैं। वर्ष 2024 में लू से हजारों की संख्या में लोगों की मृत्यु हो चुकी है और बड़ी संख्या में लोग बीमार हुए हैं।

लंबे समय तक चलने वाली ग्रीष्म लहर ने वनाग्नि के लिए शुष्क परिस्थितियां पैदा की हैं। प्राप्त आंकड़ों के अनुसार ब्राजील में 2019 से अब तक अमेजन के जंगलों में कुल 74,155 बार आग लग चुकी है। अभी कनाडा और ऑस्ट्रेलिया के जंगलों में भयंकर आग लगी थी, जो जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को स्पष्ट करती है। अधिक तापमान के कारण हिमनदों के पिघलने से भू-स्खलन तथा हिम-स्खलन की घटनाएं सामान्य हो गई हैं।

वन्यजीव प्रजाति को हानि

तापमान में अत्यधिक वृद्धि तथा वनस्पति पद्धति में बदलाव ने कुछ पक्षी-प्रजातियों को विलुप्त कर दिया है। वन्य-जीव प्रतिकूल मौसम के कारण जंगलों से मानव की बस्ती में आ रहे हैं। उन्हें आहार, जल और निवास उचित मात्रा में नहीं मिल रहा है, जिससे उनका जीवन संकट में है। विशेषज्ञों के अनुसार पृथ्वी की एक चौथाई पक्षियों की प्रजातियां वर्ष 2050 तक विलुप्त हो सकती हैं। वर्ष 2008 में ध्रुवीय भालू को उन जानवरों की सूची में रखा गया था जो समुद्री जल स्तर में वृद्धि के कारण विलुप्त हो सकते हैं।

रोगों का प्रसार और आर्थिक हानि

जलवायु परिवर्तन के फलस्वरूप भविष्य में मलेरिया, डेंगू, स्वाइन फ्लू जैसी गंभीर बीमारियां और बढ़ेंगी तथा इन्हें नियंत्रित करना कठिन होगा। इससे मृतकों की संख्या में अधिक वृद्धि सकती है और विश्व को अत्यधिक आर्थिक हानि हो सकती है।

जलवायु परिवर्तन से खतरे में मानव।

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव।

प्रकृति पर प्रतिकूल प्रभाव

जलवायु परिवर्तन से प्रकृति भी अछूती नहीं है। इसके दुष्प्रभाव के कारण सम्पूर्ण विश्व में वर्ष 2024 में बसंत समय से पूर्व ही आ गया, क्योंकि गर्मी समय से पहले ही आ गई। जापान और मैक्सिकों में समय से पहले ही फूल खिल गए। भारत में आम के वृक्षों में समय पूर्व ही बौर आ गया। यूरोप में तेजी से बर्फ पिघलने लगी। टेक्सास में अत्यधिक गर्मी पड़ती है, वहां का तापमान बहुत बढ़ चुका है। अपने देश के कई प्रदेशों के शहरों का तापमान 45 से 55 डिग्री सेल्सियस रहा। इससे मानव ही क्या सभी पशु-पक्षी और वनस्पति त्राहि-त्राहि कर उठे। यह स्थिति अत्यंत गंभीर है और आशंका है कि आने वाले समय में शायद हवा, मिट्टी, पानी की कमी तो झेलेंगे ही, हमारे स्वास्थ्य पर भी बुरा असर पड़ेगा।

वैज्ञानिकों के अनुसार वर्ष 2024 के अंत तक अल नीनो समाप्त होने से थोड़ी राहत मिलेगी, परंतु पुराने अनुभव बताते हैं कि जब प्रकृति अपने लक्ष्य से भटक जाती है, तब सटीक स्थिति का पता नहीं चलता। अपने देश में पश्चिमी विक्षोभ की समयावधि में परिवर्तन के कारण जो वर्षा दिसंबर में होनी थी, वह मार्च में हुई। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर माना गया कि वर्ष 2024 में ग्रीष्म ऋतु में लगभग एक दशक पूर्व का रिकॉर्ड टूट गया और 99 प्रतिशत आशंका है कि हम आने वाले समय में और अधिक गर्मी झेलेंगे।

हिमनदों का पिघलना

हिमनदों के पिघलने से प्रारंभ में जल निकाय में प्रवाहित जल की मात्रा में वृद्धि होती है जो अपवाह के पैटर्न को बढ़ाते हैं। अंततः हिमनदों के पिघलने से वर्ष-प्रति-वर्ष जल की उपलब्धता अधिक होगी, क्योंकि यह जलवायु, हिम और

वृक्षों की कटाई से जलवायु परिवर्तन पर नकारात्मक प्रभाव।

वर्षा पर निर्भर करेगी।

चक्रवातों से क्षति

ऊष्णकटिबंधीय क्षेत्रों के कई भागों में, ऊष्णकटिबंधीय चक्रवात में किसी क्षेत्र को तबाह करने की पूर्ण क्षमता होती है, जिससे जन जीवन की क्षति होती है और कृषि फसलों, भूमि, बुनियादी ढाँचे और आजीविका का व्यापक विनाश होता है। अध्ययन से पता चला है कि भविष्य में तेज हवाओं और वर्षा के कारण अधिक तीव्र चक्रवात आ सकते हैं।

समुद्र के जल स्तर में वृद्धि

समुद्र के माध्य जल स्तर में वृद्धि होने से आने वाले दशकों या शताब्दियों में कृषि भूमि के जलमग्न होने और भूजल के खारे होने का खतरा है। इस स्थिति में तूफानी लहरों का प्रभाव बढ़ेगा, जिससे जन-धन को भारी तबाही का सामना करना पड़ेगा।

स्वास्थ्य और पोषण में परिवर्तन

जलवायु परिवर्तन में श्वांस रोग और दस्त सहित विभिन्न बीमारियों को प्रभावित करने की क्षमता है। रोग के परिणामस्वरूप शरीर में भोजन से पोषक तत्वों को अवशोषित करने की क्षमता कम हो जाती है और बीमार लोगों की पोषण संबंधी आवश्यकताओं में वृद्धि होती है। एक समुदाय में खराब स्वास्थ्य के कारण श्रम उत्पादकता में भी कमी आती है।

वैश्विक स्तर पर जलवायु परिवर्तन से निपटने हेतु प्रयास

जलवायु परिवर्तन आज वैश्विक समस्या है। जिसके लिए विगत कई वर्षों से प्रयास किए जा रहे हैं। जलवायु परिवर्तन के प्रबोधन हेतु अंतः शासकीय पैनल (IPCC) की स्थापना वर्ष 1988 में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP) एवं विश्व मौसमविज्ञान संगठन (WMO) के द्वारा की गई, जिससे विश्व की सरकारों को एक स्पष्ट वैज्ञानिक दृष्टिकोण उपलब्ध कराया जा सके।

IPCC नियमित रूप से जलवायु परिवर्तन के बारे में वैज्ञानिक रिपोर्ट, जिसे मूल्यांकन रिपोर्ट भी कहते हैं, जारी करता है। इसकी प्रथम रिपोर्ट वर्ष 1990 में जारी हुई थी जिसमें जलवायु परिवर्तन को एक चुनौती के रूप में स्वीकार किया गया था। वर्ष 2014 में जारी पांचवीं रिपोर्ट में ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन से वैश्विक तापमान में वृद्धि का अनुमान व्यक्त किया गया है। इसे वर्ष 2020 तक नियंत्रित करने की सिफारिश की गई विश्व के कई देशों में जलवायु परिवर्तन से संबंधित कई वैश्विक सम्मेलन भी हुए हैं।

भारत के प्रयास

भारत द्वारा वर्ष 2008 में जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय कार्य योजना (NAPCC) का शुभारंभ किया गया, जिसका उद्देश्य जनता के प्रतिनिधियों एवं विभिन्न शासकीय संस्थानों द्वारा, वैज्ञानिकों, उद्योगों और समुदायों को जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न खतरों और उससे बचने के उपायों के बारे में जागरूक करना है। इस कार्य योजना में मुख्यतः 8 मिशन सम्मिलित हैं:-

- राष्ट्रीय सौर मिशन
- विकसित ऊर्जा दक्षता के लिए राष्ट्रीय मिशन
- सुस्थिर निवास पर राष्ट्रीय मिशन
- राष्ट्रीय जल मिशन
- सुस्थिर हिमालयी पारिस्थितिकी तंत्र हेतु राष्ट्रीय मिशन
- हरित भारत हेतु राष्ट्रीय मिशन
- सुस्थिर कृषि हेतु राष्ट्रीय मिशन
- जलवायु परिवर्तन हेतु रणनीतिक ज्ञान पर राष्ट्रीय मिशन

जलवायु परितर्वन से निपटने हेतु भारत में एक अंतर्राष्ट्रीय सौर गठबंधन की शुरूआत हुई है। इस सौर गठबंधन का प्रारम्भ भारत और फ्रांस ने 30 नवंबर 2015 को पेरिस जलवायु सम्मेलन में किया। इसका मुख्यालय गुरुग्राम (हरियाणा) में है। इस गठबंधन का प्रमुख उद्देश्य वैश्विक स्तर पर 1000 गीगावाट से अधिक सौर ऊर्जा उत्पादन क्षमता प्राप्त करना, 2030 तक भारत देश के सकल घरेलू उत्पाद में 30-35

जलवायु परितर्वन से निपटने हेतु भारत में एक अंतर्राष्ट्रीय सौर गठबंधन की शुरूआत हुई है। इस सौर गठबंधन का प्रारम्भ भारत और फ्रांस ने 30 नवंबर 2015 को पेरिस जलवायु सम्मेलन में किया। इसका मुख्यालय गुरुग्राम (हरियाणा) में है। इस गठबंधन का प्रमुख उद्देश्य वैश्विक स्तर पर 1000 गीगावाट से अधिक सौर ऊर्जा उत्पादन क्षमता प्राप्त करना, 2030 तक भारत देश के सकल घरेलू उत्पाद में 30-35 प्रतिशत कार्बन उत्सर्जन कम करना तथा 2030 तक गैर-जीवाश्म ईंधन से 40 प्रतिशत ऊर्जा प्राप्त करना है।

जलवायु परिवर्तन, बड़ी चुनौती के रूप में मानवता के समक्ष खड़ा है। जैसे-जैसे तापमान में वृद्धि होगी, वैसे-वैसे ही गंभीर व्यापक और न सुधारे जा सकने वाले प्रभाव सामने आएंगे। खाद्य सुरक्षा के संकट के साथ जल, जंगल और जमीन पर आश्रित रहने वाले प्राणियों पर भी इसका प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर होगा। अतः समय आ गया है कि संपूर्ण विश्व जलवायु परिवर्तन की इस चुनौती के लिए एकजुट हो जाए।

प्रतिशत कार्बन उत्सर्जन कम करना तथा 2030 तक गैर-जीवाश्म ईंधन से 40 प्रतिशत ऊर्जा प्राप्त करना है।

भारत सरकार ने वर्ष 2030 तक 33 प्रतिशत वन क्षेत्र में वृद्धि का लक्ष्य रखा है। जिसके अन्तर्गत वर्ष 2015 से 2030 तक 6.2 अरब वृक्षारोपण का लक्ष्य है।

जलवायु परिवर्तन का खतरा कम करने के लिए सुझाव

जलवायु परिवर्तन के व्यापक प्रभाव दृष्टिगोचर होते हैं। जलवायु परिवर्तन के खतरों को गंभीरता से लेते हुए, संपूर्ण विश्व को एकजुट होकर इस क्षेत्र में यथाशीघ्र सकारात्मक प्रयास किए जाने चाहिए, जिससे यदि हम खतरों को रोक न सकें, तो भी जन धन की क्षति कम से कम हो। हमें सोचना चाहिए कि इन बदलावों से हम कैसे सामंजस्य स्थापित करें।

प्राकृतिक आपदाओं को रोकने के लिए या उससे होने वाली क्षति को कम करने के लिए आपदा प्रबंधन रणनीति बनानी चाहिए।

हमें सतत कृषि पद्धतियों को अपनाना होगा। जलवायु परिवर्तन के खतरों से निपटने के लिए कृषि नीति के अंतर्गत फसल उत्पादकता में सुधार और सुरक्षा जाल विकसित करने पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। जल संसाधनों का श्रेष्ठ प्रबंधन, स्थायी कृषि की एक प्रमुख विशेषता होनी चाहिए।

गरीबी कम करने के लिए खाद्यान्न

असुरक्षित लोगों की आजीविका में सुधार की आवश्यकता है। उन्हें न केवल गरीबी और भूख से बचने में सहायता मिले, अपितु उन्हें जलवायु सम्बन्धी आपदाओं का सामना करने, उनसे उबरने और अनुकूल होने में भी सहायता मिल सके।

खेतों में पराली जलाने से वायु प्रदूषण में वृद्धि के कारण जलवायु परिवर्तन पर कुप्रभाव।

शहरी भारत न केवल वैश्विक ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन में एक महत्वपूर्ण योगदानकर्ता है, अपितु जलवायु परिवर्तन का शिकार भी है। इसकी जनसंख्या का अधिकांश भाग गरीब लोगों का है। अतः ध्यान रखा जाए कि जलवायु परिवर्तन का शहरी खाद्य सुरक्षा पर व्यापक प्रभाव न पड़े।

जलवायु

लचीली रणनीतियों को विकसित करने के लिए और पर्याप्त नीतिगत हस्तक्षेप करने के लिए भारत की खाद्य सुरक्षा पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव के एकीकृत मूल्यांकन की आवश्यकता है।

जलवायु परिवर्तन के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु सभी देशों को समन्वयपूर्ण लक्ष्योन्मुखी कार्यों को मिलकर करने की आवश्यकता है।

पेड़-पौधे जलवायु परिवर्तन के प्रथम पंक्ति के योद्धा हैं। वे वैश्विक उत्सर्जन का 33 प्रतिशत से अधिक भाग अवशोषित करते है। इसके साथ ही पशु-पक्षी और कीट-पतंगों को प्राकृतिक आवास भी उपलब्ध कराते हैं। अतः पेड़ों का कटान रोका जाए और अधिक से अधिक वृक्षारोपण किया जाए।

सारांशः जलवायु परिवर्तन, बड़ी चुनौती के रूप में मानवता के समक्ष खड़ा है। जैसे-जैसे तापमान में वृद्धि होगी, वैसे-वैसे ही गंभीर व्यापक और न सुधारे जा सकने वाले प्रभाव सामने आएंगे। खाद्य सुरक्षा के संकट के साथ जल, जंगल और जमीन पर आश्रित रहने वाले प्राणियों पर भी इसका प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर होगा। अतः समय आ गया है कि संपूर्ण विश्व जलवायु परिवर्तन की इस चुनौती के लिए एकजुट हो जाए।

जलवायु परिवर्तन का सामना करने और पर्यावरण संतुलन के लिए भारत सहित विश्व के सभी देश प्रयासरत हैं। अक्षय ऊर्जा प्रतिष्ठानों को स्थापित करने में हुई प्रगति, विद्युत वाहनों की बढ़ती संख्या और देश को हरित ऊर्जा विद्युत गृह में बदलने के प्रयास सरकार द्वारा किए जा रहे हैं, जो एक स्वागत योग्य कदम है। हमें लाखों लोगों को जलवायु संकट से बचाना है, इसमें न केवल मनुष्य, अपितु पशु-पक्षी, पेड़-पौधों, वन-पर्वत, खाद्यान्न, जड़ चेतन आदि सभी वस्तुएं सम्मिलित हैं जो परिवार, प्रकृति और पर्यावरण से सम्बद्ध हैं। सभी प्राणियों के लिए भोजन, पानी आदि मूलभूत आवश्यकताओं की सुनिश्चित पूर्ति की जानी चाहिए।

हमें प्राकृतिक आपदाओं से निपटने के लिए आपदा प्रबंधन रणनीति बनानी चाहिए, जिससे यदि आपदा को रोक न सकें तो कम से कम उसके प्रभाव को कम किया जा सके। हम अपनी नीतियों का परिस्थितिक दृष्टिकोण से अवलोकन कर लें, अन्यथा बाद में प्राकृतिक आपदाएं अधिक सोचने का अवसर नहीं देंगी और सब कुछ नष्ट हो जाएगा। प्रकृति के संकेतों को समझने में ही हमारी भलाई है।

संपर्क करें:
गौरीशंकर वैश्व विनम्र
117 आदिलनगर, विकासनगर
लखनऊ-226 022
मो.: 09956087585

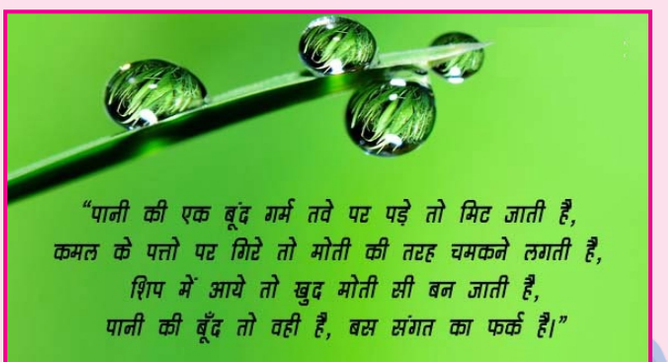

पुष्पेन्द्र कुमार अग्रवाल

केन-बेतवा नदी लिंक परियोजना का शिलान्यास

25 दिसंबर, 2024 को देश के माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी द्वारा देश के पूर्व प्रधानमंत्री माननीय स्व. श्री अटल बिहारी वाजपेयी की 100वीं जयंती के अवसर पर राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य योजना के अंतर्गत भारत की नदियों को जोड़ने वाली प्रथम परियोजना ''केन-बेतवा नदी लिंक परियोजना'' का उद्घाटन और शिलान्यास किया गया। केन-बेतवा नदी लिंक परियोजना मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश राज्यों के अंतर्गत आने वाले सूखाग्रस्त क्षेत्र बुंदेलखंड में जल संकट को दूर करने की दिशा में भारत सरकार के जल शक्ति मंत्रालय की एक क्रान्तिकारी पहल है। इस परियोजना को आठ वर्षों में दो चरणों में पूर्ण किया जाना प्रस्तावित है। इस परियोजना के अंतर्गत केन नदी पर 77 मीटर ऊंचा एवं 2.13 किमी लंबा दौधन बांध निर्मित किया जाएगा। जिसकी जल संचयन क्षमता 2,853 मिलियन क्यूबिक मीटर (MCM) होगी। इस परियोजना के अंतर्गत केन नदी बेसिन के अतिरिक्त जल को 221 किलोमीटर लंबी नहर के माध्यम से जल-संकटग्रस्त बेतवा बेसिन में स्थानांतरित किया जाना प्रस्तावित है। इस परियोजना के निर्माण से मध्य प्रदेश के पन्ना, दमोह, छतरपुर, टीकमगढ़, निवाडी, सागर, रायसेन, विदिशा, शिवपुरी और दतिया जिलों की 10.62 लाख हेक्टेयर भूमि की सिंचाई की जा सकेगी। इसके अतिरिक्त मध्य प्रदेश के लगभग 44 लाख और उत्तर प्रदेश के 21 लाख लोगों को पेय जल उपलब्ध हो सकेगा। इस परियोजना से 103 मेगावाट जलविद्युत और 27 मेगावाट सौर ऊर्जा का उत्पादन भी प्रस्तावित है।

राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान द्वारा विकसित ''ISHWAR'' APP की सहायता से देशभर के सभी जलस्रोतों की जानकारी

पर्वतीय क्षेत्रों में रहने वाले अधिकांश लोग पेयजल के लिए पर्वतीय जलस्रोतों अर्थात स्प्रिंग पर ही निर्भर रहते हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण देश में इन पर्वतीय जलस्रोतों के सूखने या फिर इनमें जल की कमी होने की समस्या निरंतर सामने आ रही है। इन स्रोतों को लेकर सरकार के पास कोई विश्वसनीय जानकारी एवं आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। यही कारण है कि पर्वतीय जलस्रोतों के उपचार और उनके पुनःपूरण को लेकर कोई भी परियोजना प्रारंभ नहीं हो पाई है। इस समस्या के समाधान हेतु राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान रुड़की के वैज्ञानिकों द्वारा ''ISHWAR'' नामक एक APP तैयार किया गया है जिसमें देश में उपलब्ध पर्वतीय जलस्त्रोतों (स्प्रिंग) की पूर्ण जानकारी उपलब्ध कराई जाएगी। भारत सरकार के जल शक्ति मंत्रालय द्वारा इस APP को स्वीकृति प्रदान की जा चुकी है। पायलट परियोजना के रूप में APP की सहायता से उत्तराखंड समेत चार राज्यों उत्तराखंड, ओडिसा, मेघालय और हिमाचल प्रदेश के स्रोतों का सर्वेक्षण कार्य प्रारम्भ किया जा चुका है। इस APP में प्रत्येक पर्वतीय जलस्त्रोत की लगभग 22 सूचनाएं फोटो सहित अपलोड की जाएंगी। सभी सूचनाएं दर्ज करने के बाद स्रोत की जियो टैगिंग की जाएगी। इस APP की सहायता से सभी स्रोतों का प्रबोधन सरल हो सकेगा। ऐसे में यदि कोई स्रोत सूखता है अथवा उसमें जल कम होता है या फिर कुछ अन्य समस्या आती है तो उसकी जानकारी सरलता से प्राप्त हो सकेगी। जम्मू में तवी नदी आवाह क्षेत्र में इस APP से सर्वे किया जा चुका है। यहां पर 469 पर्वतीय जलस्रोतों की पूर्ण जानकारी 'ISHWAR'' APP पर उपलब्ध कराई गई है। हिमाचल के चंबा में 981 पर्वतीय जलस्रोतों का सर्वे कर उनकी जानकारी को भी इस APP पर अपलोड किया गया है। इस APP द्वारा एक क्लिक पर ही इन स्प्रिंग की जानकारी कहीं भी बैठकर देखी जा सकती है। भविष्य में देशभर के समस्त स्प्रिंग या पर्वतीय जलस्रोतों को इस APP पर डाला जाएगा। इससे पर्वतीय क्षेत्रों से जनमानस का पलायन भी रुकेगा। वर्तमान में उत्तराखंड के नैनीताल जिले में इससे सम्बंधित कार्य प्रगति पर है।

राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान रुड़की में हिन्दी पखवाड़े का आयोजन

राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, रुड़की में दिनांक 14-28 सितम्बर 2024 के मध्य हिन्दी पखवाड़े का आयोजन किया गया। इस पखवाड़े में विभिन्न

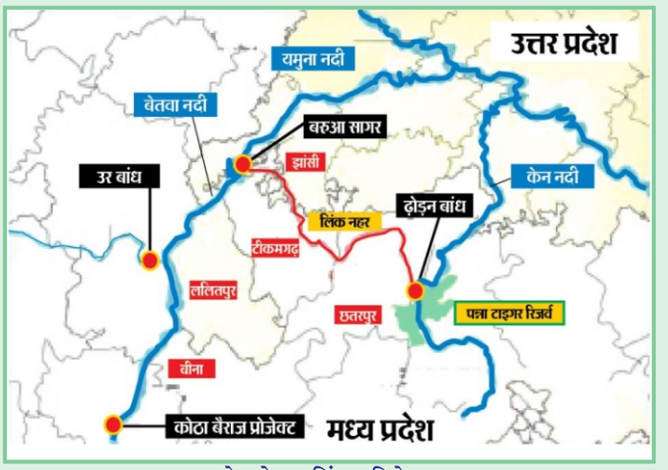

केन बेतवा लिंक परियोजना

हिन्दी प्रतियोगिताओं जैसे हिन्दी सुलेख, हिन्दी टंकण, काव्य पाठ, नोटिंग ड्राफ्टिंग, वाद-विवाद एवं राजभाषा प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। हिन्दी पखवाड़े का पुरस्कार वितरण समारोह दिनांक 04.10.2024 को संस्थान के जल तरंग सभागार में आयोजित किया गया। इस अवसर पर संस्थान के निदेशक डॉ. मनमोहन कुमार गोयल द्वारा अपने संबोधन में हिन्दी का प्रचार-प्रसार सरल भाषा में करने का आग्रह किया गया। इस समारोह के मुख्य अतिथि उत्तराखंड संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. दिनेश चन्द्र शास्त्री एवं विशिष्ट अतिथि डॉ. नरेश मोहन लेखक एवं साहित्यकार रहे। इस अवसर पर हिन्दी पखवाड़े के दौरान आयोजित विभिन्न हिन्दी प्रतियोगिताओं के विजेताओं, वर्ष 2023-24 के दौरान सर्वाधिक हिंदी में कार्य करने वाले 10 कर्मचारियों, क्षेत्रीय केंद्र काकीनाडा तथा प्रशासन अनुभाग को राजभाषा चल शील्ड तथा तकनीकी हिंदी पुस्तक लेखन पुरस्कार योजना के तहत हिन्दी में उत्कृष्ट पुस्तकों के लेखकों को पुरस्कृत किया गया। इस अवसर पर संस्थान की वार्षिक हिंदी पत्रिका प्रवाहिनी (2024) का विमोचन भी किया गया।

रिवालसर झील का बाथिमेट्रिक सर्वेक्षण

रिवालसर झील, जिसे त्सो पेमा के नाम से भी जाना जाता है, भारत के पर्वतीय राज्य हिमाचल प्रदेश के मंडी जिले के पहाड़ों में स्थित एक मध्यम ऊंचाई वाली झील है। यह मंडी शहर से 22.5 किमी दक्षिण-पश्चिम में समुद्र तल से लगभग 1,360 मीटर (4,460 फीट) की ऊंचाई पर स्थित है। रिवालसर झील

देश में पर्वतीय जलस्रोतों की जानकारी

हिंदुओं, सिखों और बौद्धों के लिए एक महत्वपूर्ण धार्मिक स्थल है। रिवालसर नामक यह प्राकृतिक झील अपने तैरते हुए ईख के द्वीपों और मछलियों के लिए प्रसिद्ध है। इस झील में प्रति वर्ष गाद के एकत्रित होने के कारण झील की गहराई दिन प्रतिदिन कम होती जा रही है। वर्ष 1996 में झील की गहराई 22 फीट थी जबकि वर्ष 2016 में सबसे गहरे स्थल पर इसकी गहराई 18 फीट आंकी गयी थी।

रिवालसर झील के संरक्षण एवं संवर्धन के सम्बन्ध में माननीय उच्च न्यायालय द्वारा पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय को दिए गए निर्देशों को ध्यान में रखकर राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, रुड़की के वैज्ञानिकों द्वारा इस झील का बाथिमेट्रिक सर्वेक्षण किया गया। सर्वेक्षण रिपोर्ट में झील की गहराई 4.5 मीटर मापी गयी है। इस सर्वेक्षण में झील की सतह का जल शुद्ध पाया गया है तथा यह पाया गया है कि झील की वर्तमान गहराई मछलियों के जीवित रहने के लिए पर्याप्त है। वैज्ञानिकों के दल ने झील में समा रही गाद से प्रति वर्ष झील की कम हो रही गहराई तथा झील के आवाह क्षेत्र में अतिक्रमण पर चिंता व्यक्त की है तथा झील के किनारे किसी भी प्रकार के निर्माण कार्य पर तुरंत प्रभाव से रोक लगाने की अनुशंसा की है।

राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान रुड़की में नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, हरिद्वार की 38वीं अर्धवार्षिक बैठक का आयोजन

राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान रुड़की के जल तरंग सभागार में दिनांक 28.08.24 को नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, हरिद्वार की 38वीं बैठक का आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम में डॉ. मनमोहन कुमार गोयल, निदेशक, राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान रुड़की, श्री शैलेन्द्र सिंह, अध्यक्ष, नराकास एवं निदेशक, THDC इंडिया लिमिटेड, ऋषिकेश, प्रोफेसर कमल कुमार पंत, निदेशक, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, रुड़की, श्री छबील कुमार मेहर, उप निदेशक (कार्यान्वयन) क्षेत्रीय कार्यान्वयन कार्यालय गाजियाबाद, श्री टी. एस. मुरली, कार्यपालक निदेशक, BHEL, हरिद्वार, डॉ. सोबन सिंह रावत, वैज्ञानिक एफ एवं राजभाषा प्रभारी, राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, रुड़की तथा श्री पंकज कुमार शर्मा, सचिव नराकास एवं वरि. हिंदी अधिकारी THDC इन्डिया लिमिटेड, ऋषिकेश ने दीप प्रज्ज्वलन करके कार्यक्रम का उद्घाटन किया।

इस अवसर पर नराकास सचिव श्री पंकज कुमार शर्मा ने संस्थानों की तिमाही हिंदी रिपोर्ट का प्रस्तुतीकरण किया। श्री छबिल कुमार मेहर, उप निदेशक (कार्यान्वयन) ने सदस्य संस्थानों की तिमाही प्रगति रिपोर्ट की समीक्षा कर आवश्यक सुझाव दिए। संस्थान के निदेशक डॉ. मनमोहन कुमार गोयल ने कहा कि राजभाषा हिन्दी का प्रयोग करना हमारा संवैधानिक दायित्व है। हमें अपने दैनिक एवं सरकारी कार्यों में प्रचलित शब्दों और आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग करना चाहिए।

राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान में दिनांक 4.10.24 को हिन्दी पखवाडे के मुख्य समारोह का आयोजन

राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान के वैज्ञानिकों द्वारा रिवालसर झील का बाथिमेट्रिक सर्वेक्षण

प्रोफेसर कमल किशोर पंत ने कहा कि हमारा संस्थान एक तकनीकी संस्थान है और हमें अपने सरकारी काम-काज में हिन्दी का अधिक से अधिक प्रयोग करना चाहिए। इस दौरान विगत छमाही में आयोजित प्रतियोगिताओं के विजेताओं को पुरस्कार वितरित किये गए। इस अवसर पर राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान की तकनीकी पत्रिका जल चेतना के जुलाई, 2024 अंक के विमोचन के साथ-साथ CBRI तथा THDC की गृह पत्रिकाओं का विमोचन भी किया गया।

राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान रुड़की द्वारा महाराष्ट्र अभियांत्रिकी प्रशिक्षण अकादमी (META), नासिक के नवनियुक्त अभियंताओं के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम

राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान रुड़की द्वारा दिसम्बर 02-15, 2024 के दौरान महाराष्ट्र अभियांत्रिकी प्रशिक्षण अकादमी (META), नासिक के अनुरोध पर महाराष्ट्र के सिंचाई विभाग में 21 नव नियुक्त सहायक अभियंताओं एवं सहायक अधिशासी अभियंताओं के लिए दो सप्ताह के प्रायोजित प्रशिक्षण कार्यक्रम का आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम में संस्थान के वरिष्ठ वैज्ञानिकों एवं भारतीय प्रौद्योगिक संस्थान, रुड़की के प्राध्यापकों द्वारा जलविज्ञान एवं जल संसाधन की विभिन्न विधाओं जैसे, सतही जल, भूजल, बाढ़, सूखा, जल गुणवत्ता, नाभिकीय जलविज्ञान, झरनों आदि पर तकनीकी व्याख्यान दिए गए। नवनियुक्त अभियंताओं को प्रयोगात्मक प्रशिक्षण प्रदान करने हेतु उत्तराखंड राज्य के विभिन्न जल संसाधन एवं जल विद्युत परियोजनाओं, बैराजों, जल संसाधन संरचनाओं जैसेः टिहरी बाँध, डाकपत्थर बैराज, लखवार-व्यासी परियोजना, चिल्ला पॉवर हाउस, भीमगोडा बैराज, ऊपरी गंगा नहर पर स्थित ऐक्वाडक्ट, लेवल क्रासिंग, आदि का तकनीकी भ्रमण कराया गया।

राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, रुड़की द्वारा राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक का आयोजन

दिनांक 17 दिसंबर, 2024 को निदेशक, राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान की अध्यक्षता में संस्थान की राजभाषा कार्यान्वयन समिति की 91वीं बैठक का आयोजन किया गया। इस बैठक में विगत बैठक में लिए गए निर्णयों पर की गई कार्रवाई की समीक्षा के साथ-साथ विगत बैठक के पश्चात किए गए हिंदी कार्यों पर चर्चा की गई तथा आगामी तिमाही के लिए लक्ष्य निर्धारित किए गए।

राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान के 47वें स्थापना दिवस का आयोजन

राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान के 47वें स्थापना दिवस का आयोजन 16 दिसंबर, 2024 को रुड़की स्थित मुख्यालय और बेलगाम, जम्मू, गुवाहाटी, काकीनाडा, भोपाल, पटना और जोधपुर स्थित इसके सात क्षेत्रीय केंद्रों में संयुक्त रूप से वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से किया गया। उद्घाटन समारोह की अध्यक्षता संस्थान के कार्यकारी निदेशक

राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, रुड़की द्वारा महाराष्ट्र अभियांत्रिकी प्रशिक्षण अकादमी, नासिक के नवनियुक्त अभियंताओं के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति की 38वीं अर्धवार्षिक बैठक

राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, रुड़की में राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक

राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान के 47वें स्थापना दिवस का आयोजन

राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान का 47वां स्थापना दिवस

एवं समन्वयक डॉ. ए.के. लोहनी, द्वारा की गयी। इस अवसर पर ''राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान की अभिदृष्टि कैसे सुधारें'' और ''2047 के लिए राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान का विजन'' विषयों पर दो विचार-मंथन सत्र भी आयोजित किए गए। डॉ. विजय कुमार, वैज्ञानिक जी, ने 2047 के लिए राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान के दृष्टिकोण पर सत्र का संचालन किया। डॉ. संजय कुमार ने ''राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान की अभिदृष्टि के लिए उठाए गए वर्तमान उपाय'' पर एक प्रस्तुति दी। मुख्यालय और सभी क्षेत्रीय केंद्रों के वैज्ञानिकों ने इन सत्रों में भाग लिया और अपने विचार प्रस्तुत किए।

भोपाल विज्ञान मेला

मध्यप्रदेश विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद द्वारा 27 से 30 दिसंबर 2024 तक भोपाल विज्ञान मेले का आयोजन किया गया। इस मेले में राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान द्वारा स्टॉल लगाकर प्रतिभागियों को संस्थान की गतिविधियों की जानकारी दी गई। मेले के उद्घाटन सत्र में राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान के भोपाल क्षेत्रीय केंद्र के वैज्ञानिक डॉ. रवि गलकटे एवं संस्थान के अन्य कर्मचारी उपस्थित रहे। संस्थान के स्टॉल पर विभिन्न विद्यालयों एवं महाविद्यालयों के विद्यार्थियों ने उत्सुकतापूर्वक अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। इस अवसर पर वैज्ञानिक सूर्यांश मंडलोई एवं अन्य परियोजना कर्मचारियों ने जल संरक्षण एवं जल संवर्धन आदि के बारे में जानकारी प्रदान की।

भोपाल विज्ञान मेले में संस्थान का स्टाल

जैसलमेर जिले में भूजल समस्या

राजस्थान के जैसलमेर जिले में, ड्रिलिंग ऑपरेशन के दौरान जल का उच्च दबाव वाला बहिर्वाह देखा गया, जिससे सुखोलम माडी, मोहनगढ़ के स्थानीय लोगों में डर का माहौल उत्पन्न हो गया। राष्ट्रीय समाचारों और सोशल मीडिया में प्रकाशित समाचार ने इस समस्या की ओर जनमानस का ध्यान आकर्षित किया। इस समस्या की जानकारी प्राप्त होने पर राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान के पश्चिमोत्तर क्षेत्रीय केंद्र, जोधपुर, केन्द्रीय भूजल बोर्ड, भूजल विभाग, जोधपुर और खान एवं भूविज्ञान विभाग, जोधपुर के वैज्ञानिकों के एक दल का गठन किया गया। वैज्ञानिकों के इस दल के द्वारा सम्बंधित साइट का दौरा किया गया और प्रारंभिक जांच रिपोर्ट तैयार गई की। यह रिपोर्ट जिला मजिस्ट्रेट, जैसलमेर को आगे की कार्रवाई के लिए सौंपी जा चुकी है।

जैसलमेर जिले में भूजल समस्या

राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान रुड़की द्वारा ''आमापित बेसिनों के जलविज्ञान'' पर छह दिवसीय प्रशिक्षण पाठ्यक्रम

राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, रुड़की ने 25-30 नवंबर, 2024 तक ''आमापित बेसिनों के जलविज्ञान'' पर छह दिवसीय सशुल्क प्रशिक्षण पाठ्यक्रम का सफलतापूर्वक आयोजन किया। इस

''आमापित बेसिनों के जलविज्ञान'' पर छह दिवसीय सशुल्क प्रशिक्षण पाठ्यक्रम

पाठ्यक्रम में 21 प्रतिभागियों ने भाग लिया, जिनमें भारत भर के प्रतिष्ठित संस्थानों और संगठनों के स्नातकोत्तर छात्र, शोधकर्ता, शिक्षाविद, अभियंता, वैज्ञानिक शामिल थे। इस प्रशिक्षण कार्यक्रम को प्रतिभागियों के ज्ञान और व्यावहारिक कौशल को और बेहतर बनाने के दृष्टिकोण से अभिकल्पित किया गया। इस प्रशिक्षण का उद्देश्य विशेषज्ञ व्याख्यानों और व्यावहारिक सत्रों के माध्यम से आमापित बेसिनों में जलविज्ञानीय प्रक्रियाओं का विश्लेषण और भविष्यवाणी करने के लिए प्रशिक्षुओं का ज्ञानवर्धन करना था।

राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान रुड़की में ''चक्रीय अर्थव्यवस्था के अंतर्गत सीवेज उपचार एवं मल प्रबंधन'' पर पांच दिवसीय कार्यशाला का आयोजन

राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान रुड़की में 9-13 दिसंबर, 2024 तक ''चक्रीय अर्थव्यवस्था के अंतर्गत सीवेज उपचार एवं मल प्रबंधन'' विषय पर पांच दिवसीय कार्यशाला का सफलतापूर्वक आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम में जल आपूर्ति और सीवरेज बोर्ड, शहरी स्थानीय निकाय, सार्वजनिक स्वास्थ्य अभियांत्रिकी प्रभाग, स्वच्छ गंगा मिशन और अन्य प्रमुख विभागों के चालीस से अधिक अभियंताओं ने प्रतिभाग किया। इस कार्यक्रम में राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान (NIH) रुड़की, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (IIT) रुड़की, रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन (DRDO), रक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, TERI तथा पतंजलि योगपीठ जैसे प्रतिष्ठित संकायों के साथ-साथ CAMBI, Daiki Axis Wastech Infra, GEA समूह और SSP प्राइवेट लिमिटेड के औद्योगिक विशेषज्ञ शामिल हुए। इस कार्यक्रम ने अभियंताओं, नीति निर्माताओं और सलाहकारों के मध्य ज्ञान के आदान-प्रदान के लिए एक उपयुक्त मंच प्रदान किया, जिससे राष्ट्रीय सीवेज और मल प्रबंधन चुनौतियों के व्यावहारिक समाधान को बढ़ावा मिला। यह प्रशिक्षण/पाठ्यक्रम स्वच्छ भारत मिशन के तहत भारत के स्थिरता लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था।

चक्रीय अर्थव्यवस्था के अंतर्गत सीवेज उपचार एवं मल प्रबंधन पर पांच दिवसीय कार्यशाला

राजकीय बालिका उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, सतवारी कैंट, जम्मू में एक दिवसीय जन जागरूकता कार्यक्रम

राजकीय बालिका उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, सतवारी कैंट, जम्मू में एक दिवसीय जन जागरूकता कार्यक्रम

राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान के पश्चिमी हिमालयी क्षेत्रीय केंद्र, जम्मू ने अगस्त 20, 2024 को राजकीय बालिका उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, सतवारी कैंट, जम्मू में एक दिवसीय जन जागरूकता कार्यक्रम आयोजित किया। यह कार्यक्रम छात्रों को ''जल बचाओ, पृथ्वी बचाओ, जीवन बचाओ'' विषय पर शिक्षित करने के लिए आयोजित किया गया था। इस कार्यक्रम का आयोजन क्षेत्रीय केंद्र में कार्यरत डॉ. पी. जी. जोस, डॉ. रियाज अहमद मीर, डॉ. ईशान शर्मा, श्री सच्चिदानंद सिंह और अन्य कर्मचारियों द्वारा किया गया था। कार्यक्रम में स्कूल के प्रधानाचार्य, शिक्षण स्टाफ और 50 छात्रों ने भाग लिया। कार्यक्रम के भाग के रूप में, एक चित्रकला प्रतियोगिता आयोजित की गई, जिसमें लगभग 25 छात्रों ने भाग लिया। प्रतियोगिता के विजेताओं को पुरस्कार प्रदान किये गए। डॉ. ईशान शर्मा ने कार्यक्रम का संचालन किया और केंद्र के प्रमुख डॉ. पी.जी. जोस ने केंद्र की गतिविधियों का विवरण प्रस्तुत किया। डॉ. रियाज अहमद मीर ने छात्रों को जागरूकता कार्यक्रम के विषय में जानकारी प्रदान की। श्री गुरप्रीत सिंह ने जल गुणवत्ता परीक्षण किट के उपयोग का प्रदर्शन किया। कार्यक्रम का समापन स्कूल के मैदान में वृक्षारोपण अभियान के साथ हुआ और डॉ. सच्चिदानंद सिंह ने समापन व्याख्यान और धन्यवाद ज्ञापन प्रस्तुत किया।

संपर्क करें:

पुष्पेन्द्र कुमार अग्रवाल

राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान रुड़की।

जल चेतना (जनवरी 2025)

समीक्षक

डॉ. सुरजीत सिंह
वैज्ञानिक ' जी'

डॉ. सोबन सिंह रावत
वैज्ञानिक 'एफ'

डॉ. मनीष कुमार नेमा
वैज्ञानिक 'ई'

डॉ राजेश सिंह
वैज्ञानिक 'ई'

डॉ. संतोष पिंगले
वैज्ञानिक 'डी'

डॉ. विनय कुमार त्यागी
वैज्ञानिक 'डी'

डॉ. विशाल सिंह
वैज्ञानिक 'डी'

डॉ. प्रशांत कुमार साहू
वैज्ञानिक 'सी'

डॉ कलजंग छोड़न
वैज्ञानिक 'सी'

डॉ. दीपक सिंह बिष्ट
वैज्ञानिक 'सी'

डॉ. सुकांत जैन
वैज्ञानिक 'सी'

डॉ. अक्षय वर्मा
वैज्ञानिक 'सी'

सुश्री पूनम राणा
वैज्ञानिक 'बी'

श्री प्रदीप कुमार उनियाल
वरिष्ठ अनुवाद अधिकारी

समीक्षा एवं सम्पादन सहयोग

श्री पुष्पेन्द्र कुमार अग्रवाल
वैज्ञानिक 'बी' (सेवानिवृत्त)

टंकण सहयोग

श्री हंसराज
टंकण सहायक

Govt. of India
Ministry of Home Affairs
Department of Official Language

सचिवालय:- टीएचडीसी इंडिया लिमिटेड
38 वीं अर्धवार्षिक बैठक

राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, रुड़की
हिंदी पखवाड़ा - 2024

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, हरिद्वार
38वीं अर्धवार्षिक बैठक
राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, रुड़की

National Institute of Hydrology, Roorkee
Welcomes you all on
47th Foundation Day Celebration
16 December 2024
JAL TARANG Auditorium
SANJAY KUMAR
A.K. LOHANI
Y R S RAO

पंजीयन संख्या : UTTHIN/2012/46793

अभिकल्पित एवं मुद्रित : पैरामाउण्ट ऑफसैट प्रिंटर्स, रूड़की